दिग्विजयी सम्राट्

# ललितादित्य मुक्तापीड़

मदनलाल विरमानी

लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# दिग्विजयी सम्राट

# ललितादित्य मुक्तापीड़



लेखक :

मदनलाल विरमानी



लोकहित प्रकाशन, लखनऊ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक :

**लोकहित प्रकाशन**

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – २२६ ००४

**प्रथम संस्करण**

मार्गशीर्ष पूर्णिमा, संवत् २०५९

१९ दिसम्बर, २००२

युगाब्द– ५१०४

**मूल्य : रु. २०.००**

मुद्रक :

**नूतन आफसेट मुद्रण केन्द्र**

संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर,

लखनऊ – २२६ ००४

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# समर्पण

प्रस्तुत रचना के आधारभूत
काव्यात्मक इतिहास–ग्रन्थ
'राजतरंगिणी' के रचयिता
महाकवि कल्हण को समर्पित

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# भूमिका

भारत के इतिहास के बारे में आज भी बहुत सी बातें सामान्य लोगों के लिए अज्ञात सी हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व परकीय अंग्रेज शासनकर्त्ताओं ने एक षड्यन्त्र के तहत भारत के गरिमामय गौरवपूर्ण ऐतिहासिक प्रसंगों तथा चरित्रों को या तो विकृत रूप से प्रस्तुत करने के भरसक प्रयास किये अथवा बिल्कुल ही छुपाकर रखने वा अनुल्लेख द्वारा उनके बारे में सामान्य लोगों को अंधेरे में रखने में वे सफल रहे। स्वाधीनता के बाद के ५०–५५ वर्षों में भी भारत सरकार के शिक्षा व सांस्कृतिक विभाग में तथाक़थित सेक्युलरिस्ट व वामपंथी विद्वानों का वर्चस्व होने के कारण राष्ट्र की अस्मिता, गौरव तथा विजयशाली वीर पुरुषों के विजिगीषु पराक्रमों का सटीक विवरण देने में कोताही बरती गयी। उससे परिणाम एक ही हुआ कि भारत का असली गौरवपूर्ण, प्रेरणादायी इतिहास व इतिहास–पुरुषों से तथा उनकी अद्वितीय उपलब्धियों से आज की युवा पीढ़ी पूर्णतः अनभिज्ञ रह गयी है।

इस तरह की परिस्थिति में भारत की साहित्यिक रचनाओं में जो ऐतिहासिक उल्लेख व तथ्य वर्णन किये गये हैं, उनके प्रति एक संदेह, संभ्रम का वातावरण भी तथाकथित सेक्युलरिस्ट वामपन्थी इतिहासकारों ने यह कहकर निर्माण किया है कि यह सब मनगढ़न्त कहानियाँ हैं, उन्हें इतिहास के साधन के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। लेकिन गम्भीरता से ऐसे साहित्य का अनुशीलन व संशोधन करने पर भारतीय इतिहास की अनेक तथाकथित गुत्थियाँ सुलझती हुई नजर आती हैं। इसी में कश्मीर के सुप्रसिद्ध विद्वान् महाकवि कल्हण द्वारा लिखित काव्यात्मक इतिहास ग्रन्थ राजतरंगिणी में कश्मीर के अद्भुत, प्रेरणादायी इस्लाम विरोधी संघर्ष की कहानी बड़े रोचक

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

व अद्भुत शैली में संस्कृत भाषा में लिखी है। श्री मदनलाल जी विरमानी ने बड़ी मेहनत करके उसमें से कश्मीर के दिग्विजयी हिन्दू सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ का चरित्र खोजपूर्वक साधार प्रस्तुत करने का एक अतीव महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में ललितादित्य के पूर्व की देश की स्थिति का सम्यक् वर्णन किया है। साथ ही कालक्रम देकर उसका साधार विवेचन भी किया है। इसके साथ चालुक्य राजवंश के विक्रमादित्य प्रथम, चीन के साम्राज्य का विस्तार, जो कोरिया से ईरान और उत्तर–पूर्वी अफगानिस्तान तक फैला हुआ था, ललितादित्य के पिता दुर्लभक द्वारा सिन्ध पर चढ़ाई करके ईसवी ६६३ में मुस्लिम सेना का समूल विनाश करना, यशोवर्धन का कन्नौज में राज्य शासन सम्भालना (ईसवी ७००), मुहम्मद बिन कासिम की सिन्ध पर विजय तथा अरबों द्वारा स्पेन को अधीन बनाना, सिन्ध, राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ पर अरबों के हमले आदि तत्कालीन तथा पूर्व की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विस्तार से वर्णन करके सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ के शासनारोहण के समय की स्थिति का सटीक, रोचक तथा उद्बोधक विवेचन किया है।

सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ ने ईस्वी ७२४ से ७६१ तक शासन किया। इस अवधि में उसने अपना साम्राज्य केवल कश्मीर तक ही सीमित नहीं रखा तो यशोवर्धन, जिसके अधीन पूर्वी व पश्चिमी बंगाल से लेकर कन्नौज और गुजरात तक का विशाल भूभाग था और जिसने अपना दूत चीन में भी भेजा था जैसे पराक्रमी वीर का भी पराभव करके यह सारा विशाल भूप्रदेश भी अपने साम्राज्य की सीमा में लाया।

इस तरह से ईसवी ६६३ से मुसलमानों द्वारा भारत पर आक्रमण करके जो बहुत बड़ी लूट आरम्भ की थी, उसे रोकने के सफल प्रयास का वर्णन भी इस पुस्तक में लेखक ने किया है। अतः यह पुस्तक सभी के लिए बड़ी प्रेरणादायक व रोचक ही सिद्ध होगी। देश के विभिन्न प्रदेशों में ऐसे पराक्रमी वीरों का अभाव नहीं था, यह बात भी इससे स्पष्ट होती है। भारत का गत हजार वर्षों का इतिहास एक सतत संघर्ष का, विजय–पराजय का इतिहास ही कहना होगा।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

अतः मैं श्री मदनलाल विरमानी जी को साधुवाद देता हूँ। इतनी आयु होते हुए भी जो कार्य श्री विरमानी जी कर रहे हैं, वह सर्वार्थ में स्वागतार्ह ही नहीं सराहनीय ही कहना होगा। देश की नयी युवा पीढ़ी इस पुस्तक को गम्भीरता से पढ़े और अपने देश के सामने जो विदेशी घुसपैठ व आतंकवाद तथा विच्छिन्नता बढ़ाने के अन्य कार्य चल रहे हैं, उनके प्रति हमारा सही रवैया क्या होना चाहिए आदि बातों के बारे में स्पष्ट निर्देशन भी किया है। अतः सारा भारत उनकी ऋणी रहेगा। कई स्थानों पर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करने का मोह लेखक की लेखनी पर हावी होता हुआ दिखता है, ऐसा न होता तो अधिक अच्छा होता।

इस पुस्तक से भारतवासियों का सभी प्रकार से प्रबोधन होगा– ऐसा मेरा विश्वास है। इससे आज के जम्मू–कश्मीर का पूर्वेतिहास जो निश्चित ही बड़ा प्रेरणादायी व अभिमान निर्माण करने वाला भी है, आज की पीढ़ी के सामने उजागर करके श्री विरमानी जी ने देश की महान् सेवा ही की है। कश्मीर भारत का केवल अभिन्न अंग ही नहीं अपितु गौरवपूर्ण मुकुटमणि जैसा होने की अनुभूति व विश्वास तथा अभिमान सभी भारतवासियों के मन में जगेगा, ऐसा भी मुझे विश्वास लगता है।

मैं श्री विरमानी जी के इस महान् उद्योग के लिए उनका मनःपूर्वक अभिनन्दन करता हूँ।

**– श्रीकांत जोशी**

अ० भा० प्रचार प्रमुख, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# लेखकीय

**हमने उन तुंद हवाओं में जलाए हैं चराग़।**
**जिन हवाओं ने पलट दी हैं बिसातें अक्सर।।**

ललितादित्य मुक्तापीड़ भारतवर्ष का अन्तिम दिग्विजयी सम्राट् था। उसके समय में अन्तिम बार भारतीय सेना भारत के बाहर दिग्विजय हेतु गयी थी। लगभग पौने तेरह सौ वर्ष इस घटना को बीत गये, परन्तु भारतीय राजा, भारतीय नेतृत्व एवं भारत गौरव की वृद्धि हेतु भारतीय सेना भारतीय सीमा से बाहर नहीं जा सके। वह भारत का ऐसा महान् दिग्विजयी सम्राट् था, जिसने अरब, कम्बोज (अफगानिस्तान), तुर्क, दरद आदि जिहादियों और तिब्बती आक्रामकों का न केवल सामना किया बल्कि शत्रुओं के घरों में घुसकर उनका दमन करने की नीति अपनायी और इस प्रकार भारत के शौर्य की धाक विदेशियों पर बैठायी। ललितादित्य न होता तो मुस्लिम शक्ति कई शताब्दी पूर्व ही भारत में प्रवेश कर इस्लामी पताका फहरा चुकी होती।

सम्राट् ललितादित्य के पराक्रमपूर्ण जीवन को महाकवि कल्हण ने अपने ऐतिहासिक काव्य 'राजतरंगिणी' की चतुर्थ तरंग में बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। प्रस्तुत पुस्तिका में मुख्यतः उसी का आधार लिया गया है। सम्राट् की इस चरित्र–सलिला में से यदि कुछ प्रेरक जलकण आज की पीढ़ी आत्मसात् कर सके तो अपने इस प्रयास को सफल मानूँगा।

उल्लेखनीय है कि राजतरंगिणी में दिये गये तिथिक्रम के अनुसार ललितादित्य ने सन् ६९५ से ७३२ ई. तक राज किया था। लेकिन चीनी प्रमाणों को दृष्टि में रखते हुए कनिंघम ने सुझाव दिया कि कल्हण ने इस काल के राजाओं की जो तिथियाँ दी हैं, उन्हें २५ से ३० साल आगे करके मानना चाहिए।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

अब यह मत आम तौर पर स्वीकार कर लिया गया है। अतः तदनुसार हमने यहाँ 'A History of Kashmir' के लेखक श्री पृथ्वीनाथ कौल बमज़ई द्वारा वर्णित तिथियों को आधार माना है।

मेरे इस प्रयास में सामग्री उपलब्ध कराने में मुझे अनेक महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनमें प्रो. (सेवा निवृत्त) के० एल० सचदेवा, प्रो. राजेन्द्र कुमार पाराशर (डी०ए०वी० कालेज, जालन्धर), श्रीमती रागिनी शर्मा (लाइब्रेरियन, प्रेस इन्फारमेशन ब्यूरो, जालन्धर), डा. सतीश कपूर, (लायलपुर खालसा कालेज, जालन्धर), ठाकुर बलवन्त सिंह (इतिहास संकलन समिति, पंजाब) तथा श्री इरविन खन्ना (सम्पादक, 'उत्तम हिन्दू', जालन्धर) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मैं उन सभी के प्रति अपना धन्यवाद व्यक्त करता हूँ। मुख्य रूप से आभारी हूँ माननीय श्री अनन्तराव रामचन्द्र गोखले का, जिनकी सतत प्रेरणा से यह पुस्तिका सम्पूर्ण हुई है। मेरे लिए यह हर्ष का विषय है कि इस पुस्तिका की भूमिका मा० श्रीकान्त जोशी, अ०भा० प्रचार प्रमुख, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है।

**– मदनलाल विरमानी**

(पूर्व सम्पादक, 'दैनिक प्रदीप' एवं 'जनप्रदीप' व 'हिन्दू' साप्ताहिक)

६६६, मोतासिंह नगर, जालन्धर– १४४००१

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# विषय—सूची



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १. संकल्प

कल उसका राजतिलक है, और आज उसकी पूर्वसंध्या पर वह आ खड़ा हुआ है अपनी राजधानी श्रीनगर से कुछ दूरी पर स्थित एक एकान्त स्थान, महापद्म सरोवर (वर्तमान वूलर झील) के किनारे एकाकी चिन्तन, अतीत–मंथन एवं भविष्य की रूपरेखा के अंकन हेतु। बहुत प्रिय है उसे यह शान्त जगह। वह प्रायः यहाँ आता रहता है। घोड़े को एक ओर बाँध कर बैठ जाता है एक बड़े से पत्थर पर। नैसर्गिक दृश्यों का आनन्द लेना उसके स्वभाव में है। शीतल बयार उसे इस सरोवर की स्वच्छ जलराशि का स्तुतिगान करती प्रतीत होती है, मनमोहक दृश्यावली उसके अंग–अंग में तरोताजगी भर देती है। 'पृथ्वी का स्वर्ग' उसे यहाँ केन्द्रीभूत हुआ लगता है और मन की गुत्थियाँ अपने–आप सुलझने लगती हैं।

यहाँ का रेशमी वातावरण उसके लिए अनेक प्रकार से सुखदायक है। यहाँ आकर उसकी अनेक मधुर स्मृतियाँ जाग्रत हो जाती हैं, वे सभी क्षण साकार हो उठते हैं जो बचपन में उसने यहाँ अपने पूज्य पिता दुर्लभकप्रतापादित्य से स्नेहसिक्त वार्तालाप में उनसे दिशा–संकेत प्राप्त करते हुए बिताए थे। पिता की तीन सन्तानों में सबसे छोटा होने के कारण सर्वाधिक दुलार का सौभाग्य भी तो प्राप्त रहा था उसे। यद्यपि तब वह अबोध था, राजनीति और उसकी गहराइयों को नहीं समझता था किन्तु राजपरिवार का सदस्य होने के कारण शासन व शासकीय विषयों से उसका नित्य पाला तो पड़ता ही था। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि तथा अद्वितीय प्रतिभा अपने में बहुत कुछ समेटती चली जाती थी। पिता द्वारा बतायी जाने वाली ऐतिहासिक गाथाओं को वह कहानियों की तरह सुनता और हृदयंगम करता चला जाता।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

आज उसे मुख्य रूप से वह प्रसंग स्मरण हो आया, जब लगभग तेरह वर्ष पहले वह पिताश्री के साथ उनके देहावसान (सन् ७११ ई.) से कुछ ही दिन पहले यहाँ आया था। तब उसकी आयु लगभग १२ वर्ष की रही होगी। पिता दुर्लभकप्रतापादित्य (शासनकाल : सन् ६६१ से ७११ ई.) ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था, "बेटा, बहुत आशाएँ हैं तुम पर भारत माता को। बड़े होकर उसके गौरव को दसों दिशाओं में बढ़ाना।" पिता ने दूर अरब देश से उठे तूफान के प्रति भी उसे सावधान किया था। कहा था, "यह तूफान घोर धार्मिक उन्माद से प्रेरित है। अरबों ने ईरान (६३७ ई.) जीता और पाँच वर्ष के अन्दर–अन्दर हिरात (अफगानिस्तान) तक का इलाका अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। तत्पश्चात् ओक्सस नदी तथा हिन्दूकुश पर्वत के मध्य का सारा इलाका विजय कर लिया। उसके बाद हमारे देश भारत, इस सोने की चिड़िया की ओर ललचाई नजरों से देखना शुरू किया। खलीफा उमर (६३४–४४ ई.) के समय उन्होंने थाना (निकट मुंबई), भड़ौच और देबाल (सिन्ध) को जीतने का यत्न किया परन्तु असफल रहे। पुनः मकरान (बलोचिस्तान) के तट की ओर से पश्चिमी सिन्ध पर कब्जा करने की एक और कोशिश की। सिन्ध में उन दिनों सहर्षराय नाम का बौद्ध राजा राज्य करता था। सिन्धु नदी का डेल्टा इस राजा के इलाके में शामिल था। बलोचिस्तान भी इसके अधीन था। वह अरब आक्रमणकारियों का वीरतापूर्वक मुकाबला करता हुआ शहीद हो गया। अरबों ने मकरान पर (६४४ ई.) कब्जा कर लिया। इस दौरान सहर्षराय का बेटा साहसी राय भी उनका मुकाबला करता हुआ मारा गया। साहसी राय के मारे जाने पर सिन्ध का राज्य एक ब्राह्मण वजीर चच ने सम्भाला, जिसने ४० वर्ष तक राज्य किया। अरबों ने खलीफा अली के समय में एक बार फिर किकान (सिन्ध) पर (६६३ ई.) चढ़ाई की। परन्तु पुनः उन्हें मुँह की खानी पड़ी। इसके बाद २० वर्ष के अन्दर किकान (सिन्ध) पर छह बार चढ़ाई की गयी परन्तु मकरान की पूर्वोक्त विजय के सिवा अरबों को कोई लाभ नहीं हुआ।

"अभी लगभग ३ वर्ष पूर्व (७०८ ई.) एक जहाज लंका से इराक जा रहा था, जिसमें कुछ मुस्लिम महिलाएँ भी यात्रा कर रही थीं। इस जहाज को देबाल (काराची का पूर्ववर्ती नाम) की बन्दरगाह के पास समुद्री डाकुओं ने लूट लिया।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

इराक के राज्यपाल हज्जाज ने सिन्ध के तत्कालीन राजा दाहिर (सुपुत्र चच) को इन औरतों को छुड़ाने और लुटेरों को दण्डित करने के लिए लिखा परन्तु राजा दाहिर ने स्पष्ट किया कि उसका इन डाकुओं पर कोई नियन्त्रण नहीं है। इस पर हज्जाज को सिन्ध पर चढ़ाई करने का बहाना मिल गया।

"अरबों का वास्तविक हेतु तो सिन्ध पर आक्रमण करके ईरान, इराक आदि की तरह सिन्ध का भी इस्लामीकरण तथा लूटमार करना ही था। अतः हज्जाज ने खलीफा के आदेशानुसार पहले उबेदुल्लाह नामक सेनापति को देबाल (सिन्ध) पर आक्रमण करने के लिए भेजा, लेकिन उसकी हार हुई और वह मारा गया। इसके बाद दूसरे सेनापति बुदेल को समुद्री मार्ग से देबाल पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। बुदेल को सिन्ध के राजा दाहिर के लड़के जयसिंह ने युद्ध में परास्त किया। बुदेल भी मारा गया।"

वृद्ध पिता ने यह भी कहा था, "यह अरब अब फिर बहुत बड़े पैमाने पर युद्ध की तैयारियों में लगे हैं। गुप्तचरों द्वारा पता चला है कि इराक के राज्यपाल हज्जाज ने खलीफा से ६००० सैनिक माँगे हैं और अपनी सेना को सब प्रकार के हथियारों से लैस करके सिन्ध पर पुनः आक्रमण के लिए भेजने वाला है। वह अपने दामाद मुहम्मद बिन कासिम को इस अभियान का सेनापति भी नियुक्त कर चुका है।"

महापद्म सरोवर पर पहुँचते ही उसकी वे सब यादें जाग्रत हो उठी थीं। पूज्यपिता द्वारा वर्णित तत्कालीन परिस्थितियों का विश्लेषण उसके मस्तिष्क में बड़ी तेजी के साथ घूम गया। उसके बाद अपने सबसे बड़े भाई चंद्रापीड़ के आठ वर्ष के शासनकाल और फिर दूसरे भाई तारापीड़ के चार वर्ष के शासनकाल की सभी प्रमुख घटनाएँ भी स्मरण हो आयीं। इन सब में से अभी तक के अपने अनुभवों, निष्कर्षों के दृष्टिगत उसने आज कुछ संकल्प किये और कुछ निश्चय धारण कर राज्याभिषेक के साथ अपने कन्धों पर आने वाले उत्तरदायित्वों का बोधकर, इससे पहले कि परिवार के लोगों को उसकी अनुपस्थिति का आभास हो, घोड़े पर सवार होकर वापस राजमहल लौट आया। वह लौटा तो उसकी आँखों की चमक दुगुनी हो गयी थी। मुखमण्डल की आभा और अधिक निखर उठी थी। उसके निश्चय स्पष्ट हो चुके थे। आँधी की तरह

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

बढ़ रही एक विदेशी सत्ता से कैसे निपटना है, पश्चिम और उत्तर की आततताई शक्तियों के प्रति कैसा व्यवहार करना है और उनसे दो–दो हाथ करने से पहले किस प्रकार शक्ति अर्जित कर सर्वत्र अपनी धाक बैठानी आवश्यक होगी, इसकी एक सुविचारित रूपरेखा उसके सामने थी। किस प्रकार अपने से बड़े दोनों भाइयों के गुणों को ग्रहण करने और अवगुणों से बचने की व्यवस्था करनी है, इन सभी पर भी अब समग्र चिन्तन वह कर चुका था।

पाठकगण समझ गये होंगे कि यह तेजस्वी युवक कौन था। यह था मुक्तापीड़, राजा दुर्लभक–प्रतापादित्य का सबसे छोटा पुत्र, जो राज्याभिषेक के पश्चात् ललितादित्य के नाम से इतिहास में विख्यात हुआ।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# २. दिशा-दिशा पुकारती

ललितादित्य–मुक्तापीड़ के सिंहासनारूढ़ होने पर जनता में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। सारे कश्मीर राज्य में दीपोत्सव मनाया गया। गत चार वर्षों का तारापीड़ का शासन एक क्रूर शासक का राज्यकाल रहा था। अतः ललितादित्य को लोगों ने एक त्राता के रूप में देखा। ललितादित्य ने भी अपने गुणों से सबको मोहित कर लिया।

कार्कोट राजवंश के संस्थापक दुर्लभवर्धन प्रज्ञादित्य (शासनकाल : ६२५–६६१ ई.) का उल्लेख, जो तंग वंशीय चीन–इतिवृत्त में मिलता है, उससे प्रकट होता है कि चीन–काबुल व्यापारिक पथ पर इस राजा का नियन्त्रण था। ह्यूनसांग के स्वागत के लिए इस राजा की माता तथा कनिष्ठ भ्राता हुष्कपुर गये थे। तब बुद्ध, भगवान विष्णु के अवतार मान लिये गये थे। अतएव बुद्ध और विष्णु दोनों की पूजा एक ही भगवान् के दो स्वरूपों में होती थी। हिन्दू तथा बौद्ध एक साथ सहिष्णुतापूर्वक रहते थे। इनमें विरोध नहीं था। उसके राज्य का विस्तार कश्मीर घाटी के अतिरिक्त पाँच अन्य भूभागों तक्षशिला (जिला रावलपिण्डी), सिंहपुरा (नमक की पहाड़ियों), उरुषा (हजारा या ऐबटाबाद जिला, प्रणोत्स (पुंछ) तथा राजपुरी (राजौरी) तक भी था। वह केवल कश्मीर घाटी का ही नहीं, बल्कि पंजाब के पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी भाग का भी शासक था।

दुर्लभवर्धन के पश्चात उसका बेटा दुर्लभक–प्रतापादित्य राजगद्दी पर बैठा था। उसने अपने नाम पर नया नगर प्रतापपुर आबाद किया, जो आज तापर के नाम से (श्रीनगर से १८ मील पश्चिम में) प्रसिद्ध है। दुर्लभक के शासन–काल (६६१–७११ ई.) में कश्मीर समृद्धिशाली प्रदेश था, प्रगति पथ पर

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

अग्रसर था। विदेशी व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा था।

दुर्लभक ने रोहतक (हरियाणा) से कश्मीर आकर बसे हुए नोण नामक एक समृद्ध व्यापारी की परित्यक्ता पत्नी सुन्दरी नरेन्द्रप्रभा से विवाह किया। कश्मीरी समाज ने इसे बुरा नहीं माना था, नरेन्द्र प्रभा को राजरानी के रूप में स्वीकार किया था। कश्मीर में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित था। जाति–बन्धन कठोर नहीं थे। जनमानस भी संकीर्ण नहीं था। राजा दुर्लभक का पिता दुर्लभवर्धन कायस्थ था तथापि दुर्लभक के नाना राजा बालादित्य (गोनन्द राजवंश) ने अपनी एकमात्र कन्या अनंगलेखा का विवाह इस कायस्थ राजकर्मचारी दुर्लभवर्धन से कर दिया था। पुरुष एवं स्त्री दोनों अपनी इच्छा से अन्तर्जातीय विवाह करते थे।

रानी नरेन्द्रप्रभा ने नरेन्द्रेश्वर शिव मन्दिर का निर्माण कराया। उसने चंद्रापीड़, तारापीड़ तथा मुक्तापीड़, तीन पुत्ररत्नों को जन्म दिया, जो बाद में क्रमशः वज्रादित्य, उदयादित्य तथा ललितादित्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

## चंद्रापीड–वज्रादित्य (शासनकाल : ७११ से ७१६ ई.)

राजा दुर्लभक के देहावसान के बाद उसका सबसे बड़ा बेटा चंद्रापीड़ वज्रादित्य कश्मीर का राजा बना। यह धर्मपालक, न्यायप्रिय एवं योग्य शासक था, दूरदर्शी तथा राजनीति विशारद था। सुदूर पश्चिम से उठते नव मुस्लिम खतरे को उसने भाँप लिया था। चीन के तांग (T'ang) वंश के इतिहास में राजा चंद्रापीड़ का यह उल्लेख मिलता है कि उसने सन् ७१३ ई. में चीन के राजा के पास अपना राजदूत भी भेजा था। उन अरबों के विरुद्ध चीन के साथ अपने राजनीतिक तथा सैनिक सम्बन्ध बढ़ाने के लिए कि जो उस के राज्य की उत्तर–पश्चिम सीमाओं पर संकट बनकर मंडराने लगे थे। किन्तु चीन के राजा ने अपनी विदेश–नीति वश इस संदेश का कोई सकारात्मक उत्तर नहीं दिया था।

चंद्रापीड़ कुशल एवं सच्चरित्र राजा था। 'राजतरंगिणी' का कवि कल्हण उसका स्तुतिगान करते हुए लिखता है, "उससे पहले धर्म का एक पाद (चरण) था। उसने धर्म के शेष तीन पाद जोड़कर उसे फिर से चतुष्पाद (चार पैरों युक्त) किया। वह सतयुग के राजाओं की श्रेणी में रखने योग्य था। परन्तु ब्रह्मा ने भूल

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

से उसे कलियुगी राजाओं की श्रेणी में रख दिया था।"

एक बार राजा भगवान् त्रिभुवन स्वामी (विष्णु) का मन्दिर बनवा रहा था। उस मन्दिर की ही सीमा में एक चमार की झोपड़ी पड़ रही थी। इस कारण उस झोपड़ी को ले लेना जरूरी था। किन्तु चमार अपनी कुटिया छोड़ने को तैयार नहीं था। वह धन लेकर भी अपनी झोपड़ी देना नहीं चाहता था। बात राजा तक पहुँची तो राजा ने अपने अधिकारियों को ही दोषी बताया, चमार को नहीं। "ऐसी बात है तो मन्दिर बनाना बन्द कर दो", राजा ने कहा, "या किसी और स्थान पर बनाओ।"

राजा ने चमार को सादर बुलाया। चमार ने राजा से कहा कि मेरी कुटिया मुझे माता के समान प्यारी है किन्तु यदि आप मेरी कुटिया पर पधार कर कुटी के लिए याचना करें तो मैं आपको यह झोपड़ी दे सकता हूँ। राजा तुरन्त उसकी कुटी पर पहुँचा। याचना की और धन देकर झोपड़ी खरीद ली। तभी त्रिभुवन स्वामी के मन्दिर का निर्माण हो सका। स्पष्ट है कि राजा निरंकुश नहीं था, धर्म से नियन्त्रित था। उसने न्याय प्रक्रिया और न्याय संहिता की उपेक्षा नहीं की। प्रजा भी धन की अपेक्षा मान–प्रतिष्ठा व स्वाभिमान को अधिक महत्त्व देती थी।

चंद्रापीड़ के राज्य में एक बार एक मांत्रिक (जंतर–मंतर जानने वाले) ब्राह्मण ने द्वेषवश एक अन्य ब्राह्मण को जादू–टोना करके मार डाला। राजा ने उसे दण्डित किया। इस पर वह ब्राह्मण राजा पर बहुत क्रुद्ध था। राजा के छोटे भाई तारापीड़ ने इस ब्राह्मण को राजा के ही विरुद्ध अपने जादू–टोने का प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। राजा जब मृत्यु शैया पर था तो उसे पता चला कि इस मांत्रिक ब्राह्मण ने ही उस पर अभिचार (मन्त्र–तन्त्र द्वारा मारण–उच्चाटन) का प्रयोग किया है। किन्तु राजा ने उसे यह कह कर क्षमा कर दिया कि "दोष इसका नहीं है। औरों के द्वारा प्रेरित होकर ही उसने ऐसा किया।" राजा ने उसका वध नहीं किया। इस प्रकार ८ वर्ष ८ मास के अपने सुशासन के पश्चात राजा चंद्रापीड सदा के लिए सज्जनों के हृदय और स्वर्गधाम में प्रविष्ट हो गया।

## तारापीड़ उदयादित्य (शासनकाल : ७१६ से ७२४ ई.)

चंद्रापीड़ के बाद उसका छोटा भाई तारापीड़ उदयादित्य सिंहासन पर बैठा। इसका स्वभाव अपने ज्येष्ठ भ्राता के सर्वथा विपरीत था। इसी ने भ्रातृद्रोह

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कर राजा चंद्रापीड़ को अभिचार कार्य द्वारा मरवाया था। राज्य–प्राप्ति के बाद उसने अपने शत्रुओं के सिर काटते हुए एक भव्य समारोह का आयोजन किया तथा क्रूरता की सभी सीमाओं को पार कर कबन्धों (सिर कटे धड़ों) का नाच कराया। इस अवसर पर वह स्वयं और उसके सहयोगी खूब अट्टहास करते रहे, जोर–जोर के ठहाके लगाते रहे। अपने क्रूर कृत्यों के कारण वह जनता में लोकप्रिय न हो सका तथा जिस उपाय से उसने राज्य प्राप्त किया था, वही अभिचार कर्म ही उसके भी मरण का कारण बना। वह केवल गिनती के कुछ वर्ष ही राज्य कर सका। उसके बाद शुरू हुआ दुर्लभक के सबसे छोटे पुत्र **ललितादित्य मुक्तापीड़** का शासनकाल (७२४ से ७६१ ई.)। उसने अपने पूर्व शासकों से बहुत कुछ सीखा। उनके गुणों को अपनी झोली में भरने के प्रयत्नों में जरा भी कृपणता से काम न लिया। ज्येष्ठ भ्राता चंद्रापीड़ के सद्गुणों को अपनाने का यत्न किया। पिताश्री के मार्गदर्शन का स्मरण तथा चंद्रापीड़ का अनुसरण कर मंझले भाई तारापीड़ के कुशासन का जनता को विस्मरण कराने का भरसक प्रयास किया। उसे अनुभूति होने लगी कि उसका जन्म केवल कश्मीर राज्य की सीमाओं तक आबद्ध होकर रह जाने के लिए नहीं हुआ है, इन सीमाओं के पार भी अनेक अभियान उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

घाटी के दक्षिण में स्थित पीर पंजाल की पर्वत शृंखला उसे भविष्यवाणी करती मालूम होती, "हे मुक्तापीड़, तुम्हारे इस नाम का अर्थ जहाँ यह है कि तुम्हारा मुकुट मोतियों से जड़ा (मुक्ता अर्थात् मोती, पीड़ अर्थात् मुकुट) है, वहाँ यह अर्थ भी निकलता है कि तुम मुकुट से मुक्त हो चुके हो अर्थात् तुमने मुकुट को परित्याग कर दिया है। परन्तु वास्तव में तुम 'अविमुक्तापीड़' हो अर्थात् मुकुट से कभी मुक्त (वंचित) होने वाले नहीं हो। आओ, मैं तुम्हारी चरणरज को अपने मस्तक पर धारण करने को व्याकुल हो रहा हूँ।" उत्तर में खड़ा हिमाच्छादित हिमालय उसे आमन्त्रण देता प्रतीत होता, "आओ, प्रतापादित्य के सर्वाधिक स्नेहसिंचित सुपुत्र ललितादित्य, अपने ललित मुखारविन्द की शोभा मुझे निहारने दो, इस पार के निरंकुश शासकों पर अपने भीतर के आदित्य का प्रचण्ड तेज बिखेर कर उनका दर्पदलन करो।" वितस्ता (जेहलम) नदी की उच्छृंखल लहरें उसे आवाहन करती प्रतीत होतीं, "हे कार्कोटवंश शिरोमणि, तुम्हारा कार्यक्षेत्र मर्यादित नहीं, अमर्यादित है। बढ़ो, आगे बढ़ो, वसुन्धरा तुम्हारे स्वागत के लिए

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

अपने पलक–पांवड़े बिछाये है।" उसे प्रतीत होता, दिशाएँ उसे पुकार रही हैं, हवाएँ स्वच्छंद विचरण के लिए अपनी भुजाएँ विस्तीर्ण कर रही हैं। उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ फड़कने लगतीं, साहस शतगुणित हो जाता।

अतः विजयादशमी आते ही वह निकल पड़ा था सीमोल्लंघन के लिए। उसने दिग्विजयों का जो सिलसिला शुरू किया, वह उसके जीवन के अन्तिम पड़ाव तक निरन्तर अबाधित रूप से चलता ही चला गया। उसकी नसों में दौड़ते रक्त में विद्यमान शासकोचित असीम पौरुष तथा मन–मस्तिष्क में वर्चस्व–प्राप्ति की अदम्य अभिलाषाओं ने उसे स्थिर होकर बैठने नहीं दिया। वह यद्यपि मात्र एक प्रादेशिक राजा के रूप में सिंहासन पर बैठा था, तथापि अपनी युक्ति–बुद्धि, पुरुषार्थ, राजनीतिक सूझबूझ व रणनीतिक प्रवीणता के आधार पर उसने सार्वभौम राजा के रूप में विपुल प्रभुत्व प्राप्त किया। कश्मीर राज्य की सीमाओं के पार सत्ता का विस्तार कर देश–देशान्तर में विजय पताका लहाराता चला गया।

उसने अपने प्रताप की किरणों की कान्ति से जम्बुद्वीप को अलंकृत किया। वह अत्यन्त पराक्रमी था। उसकी रणदुंदुभि का भीषण निनाद सुनकर मारे डर के शत्रु सेना सिर पर पाँव रखकर भाग खड़ी होती। दिग्विजय के अवसर पर युद्धभूमि में हाथ जोड़कर प्रणाम करने वाले राजाओं को देखकर वह पराक्रमी राजा क्रोध त्याग देता। नित्यप्रति पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले सूर्य की भाँति उस विजयेच्छु राजा की अधिकांश आयु विजय यात्राओं में ही बीती। उसके शासनकाल में कश्मीर भारत का महान् शक्तिशाली राज्य बना। वह हमारा अन्तिम बहिर्जगत दिग्विजयी राजा था। उसके समय में अन्तिम बार भारतीय सेना भारत से बाहर दिग्विजय हेतु गयी थी। उसके पश्चात् भारतीय सेना भारतीय गौरव के विस्तार हेतु भारतीय सीमा के बाहर नहीं जा सकी। इस दिग्विजयी सम्राट् ने भारत के बाहर भारतीय शौर्य और शालीनता की छाप स्थापित कर भारत माता को गौरवान्वित किया था।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ३. कन्नौज विजय

प्रजा राजा की न्यायप्रियता तथा प्रशासनिक सुव्यवस्था से प्रसन्न हो तो उसके लिए प्राण तक न्यौछावर करने में भी अपना अहोभाग्य मानती है। ललितादित्य ने सैनिकों की नयी भरती के लिए आह्वान किया तो लोग जौक–दर–जौक उसकी सेना में शामिल होने के लिए आगे आने लगे। सैनिक तैयारियाँ नये जोश के साथ शुरू हो गयीं। उधर गुप्तचर विभाग का भी पुनर्गठन किया गया। निकट व दूरस्थ राज्यों की विशेष गतिविधियों, राजा–प्रजा सम्बन्धों तथा सुरक्षा व्यवस्था आदि के बारे में गुप्त सूचनाएँ सीधी राजा तक पहुँचने लगीं। राजा और जन सामान्य में परस्पर विश्वास बढ़ा।

अश्वारोही सेना के साथ–साथ पैदल सेना को भी प्रशिक्षित करने तथा सुदक्ष बनाने के लिए प्रातः सायं नियमपूर्वक व्यायाम एवं शस्त्रास्त्र अभ्यास को अनिवार्य कर दिया गया। नियमित सेना के साथ बड़े पैमाने पर अनियमित सेना की भी योजना सोची गयी, जिसमें प्रत्येक अभियान के दौरान सम्बद्ध राज्य के स्थानीय लोगों की भरती तथा प्रशिक्षण की भी योजना थी। समय–समय पर होने वाली सैनिक प्रतियोगिताओं और सामूहिक अभ्यास वर्गों द्वारा सेना में आत्मविश्वास, नित्यसिद्धता व तत्परता बढ़कर सामरिक कौशल में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। शस्त्रास्त्रों के विधिवत भण्डारण तथा मार्जन–परिमार्जन की ओर ध्यान दिया जाने लगा। विशिष्ट सैनिक दस्तों का अलग से गठन भी ललितादित्य की सैनिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। इस सारी तैयारी के साथ–साथ सेना को आधुनिकतम शास्त्रास्त्रों तथा विधियों से सुसज्जित करना भी ललितादित्य ने परम आवश्यक माना।

उन दिनों चीन की सेना आसपास के राज्यों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षित-

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

थी, सैनिक प्रणाली अधिक उन्नत थी। उल्लेखनीय है कि किसी समय (६६१ ई. से ६६५ ई. तक) चीन का साम्राज्य अति विस्तृत व विशाल रहा था। उसकी सल्तनत कोरिया से लेकर ईरान तक फैली हुई थी और कैप्सिया (उत्तर–पूर्वी अफगानिस्तान) भी चीन की हुकूमत में शामिल था। वार्षिक शाही जुलूस में स्वात घाटी (वर्तमान उत्तरी पाकिस्तान) के राजदूत भी शामिल होते थे। मगर यह सल्तनत अधिक दिर तक स्थिर न रही थी। इन दिनों वहाँ के सत्तासीन तंग राजवंश का शासन पतनोन्मुख था। ललितादित्य ने इसका लाभ उठाया। उत्तरीय क्षेत्रों के अनेक साहसी योद्धा कश्मीर नरेश की ओर आकर्षित हुए। ललितादित्य ने उनके अनुभवों और सैनिक योग्यताओं को निखार कर उन्हें श्रेष्ठ सैनिकों का रूप दिया। ललितादित्य की सैनिक तैयारियों की चर्चा ने चीनी सेना के अनेक युद्ध–प्रवीण लोगों को भी उसकी ओर आकृष्ट किया। ललितादित्य ने भी उनका पूरा–पूरा फायदा उठाया। उदाहरणार्थ तुःखार देश निवासी चंकुण नामक सेनापति, जिसने चीनी जनरल के रूप में काफी ख्याति प्राप्त की थी, (चंकुण, चीनी भाषा में 'सेनापति' के लिए प्रयुक्त शब्द का अपभ्रंश है, जिससे वह इसी नाम से विख्यात हो गया था) को ललितादित्य ने अपनी सेना में विशिष्ट पद पर तैनात किया।

इस प्रकार अनेक युद्ध–विशारदों को अपनी सेना में भरती कर कई सैन्य सुधारों व आधुनिक प्रशिक्षण द्वारा ललितादित्य ने अपने सैन्य बल को श्रेष्ठतम शक्ति का रूप दिया। इससे जहाँ लोगों के लिए नये रोजगारों के नये अवसर खुले, वहाँ एक विराट् अत्याधुनिक सैन्य बल भी सज्जित हुआ। कश्मीर नरेश की योजनाएँ रंग लायीं। आर्थिक समृद्धि और सैन्य वृद्धि दोनों साथ–साथ फलने–फूलने लगीं। उस समय देश में कोई भी एक सर्वश्रेष्ठ सत्ता नहीं थी। भारत अनेक राज्यों का समुच्चय था, जिनमें से प्रत्येक पूरी तरह स्वतन्त्र तथा प्रभुसत्ता सम्पन्न था।

सुयश रूपी पगड़ी से सुशोभित राजा ललितादित्य ने शीघ्र ही निकटवर्ती राजाओं से कर वसूल करते हुए चारों ओर अपने प्रबल शौर्य का आतंक जमा दिया। उसने पंजाब के उपजाऊ मैदानों में अपने सैनिकों को उतारा तो वहाँ के सभी लोगों ने उसका प्रसन्नतापूर्वक स्वागत किया। इस प्रान्त के पश्चिमी

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

व उत्तर–पश्चिमी भागों का शासन तो उसे कश्मीर घाटी के राज्य के साथ पहले से ही पुरखों से प्राप्त था। शेष भाग ने भी उसे 'स्वागतम्' कहकर आनन्द का अनुभव किया। ललितादित्य ससैन्य आगे बढ़ा। गंगा और यमुना नदियों के बीच का प्रदेश उसके सामने फैला था। यहाँ राजा यशोवर्मन का आधिपत्य था, और राजधानी थी कन्नौज।

**पूर्व शासक :** कन्नौज प्राचीन काल से ही भारत के ऐतिहासिक घटनाक्रम का केन्द्र रहा है। महाभारत काल में यह पांचाल राज्य की राजधानी था। तब पांचाल क्षेत्र में पंजाब भी शामिल था।

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत में छोटे–बड़े अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। इनमें से एक स्थाणीश्वर (आधुनिक थानेसर, अम्बाला के पास) का साम्राज्य भी था। इस वंश के सुप्रसिद्ध महाराजाओं प्रभाकर वर्धन तथा राज्यवर्धन के बाद हर्षवर्धन सिंहासनासीन (सन् ६१५ ई.) हुआ। सम्राट हर्ष ने थानेसर की बजाय कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया, क्योंकि कन्नौज थानेसर की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण नगर था और हर्ष के विस्तृत साम्राज्य के केन्द्र में भी था।

सम्राट् हर्ष की मृत्यु (६४७ ई.) के बाद उत्तरी भारत में अराजकता व अशान्ति फैल गयी। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर हर्ष के मन्त्री अर्जुन ने सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। अर्जुन के बाद कन्नौज के सिंहासन पर कौन बैठा, इस विषय में इतिहास कुछ प्रकाश नहीं डालता। केवल इतना पता चलता है कि ७०० ई. में कन्नौज के सिंहासन पर यशोवर्मन बैठा और उसने ७४० ई. तक वहाँ राज्य किया।

क्या यशोवर्मन एक नया उभरा साहसी योद्धा था, जो इतिहास में एक टूटे तारे के समान चमकता हुआ प्रकट हुआ और शीघ्र ही लुप्त हो गया या किसी यशस्वी राजकुल से सम्बद्ध था ? इसके दरबारी कवि वाक्पति की प्राकृत भाषा की रचना 'गौड़–वहो' (बंगाल नरेश का संहार) के अनुसार यशोवर्मन चन्द्रवंशी राजाओं की वंशावली में एक आभूषण के समान था। कनिंघम ने उसका सम्बन्ध मौखरि (Maukhri) वंश से बताया है, जिस वंश के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

शासक सम्राट् हर्षवर्धन के शासनकाल से पहले कन्नौज पर राज्य करते थे।

प्रसंगवश यहाँ मौखरि वंश के विषय में संक्षिप्त विवरण देना असंगत न होगा। ५०० ई. के लगभग मौखरि वंश के एक सामन्त ने कन्नौज में अपनी सत्ता स्थापित की। इसी वंश के चौथे राजा ईशान वर्मन ने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की तथा आस–पास के प्रदेशों को विजय किया। उसने बंगाल, उड़ीसा व आन्ध्र के शासकों को भी हराया था। ईशान वर्मन या उसके पुत्र शर्व वर्मन ने हूणों को भी परास्त किया। (ईशान वर्मन की शक्ति का आरम्भ ५५४ ई. से बताया जाता है।) ईशान वर्मन का लड़का शर्व वर्मन और पोता अवन्ति वर्मन शक्तिशाली सम्राट् थे। अवन्ति वर्मन के बड़े लड़के ग्रह वर्मन का विवाह सम्राट् हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री से हुआ था। ग्रह वर्मन को मालवा के शासक देव गुप्त ने युद्ध में मार कर कन्नौज के शासन पर अधिकार कर लिया। तब हर्षवर्धन की सेनाओं ने युद्ध में देव गुप्त का वधकर मालवा के सिंहासन पर अपने परम मित्र माधव गुप्त को बैठाया। कन्नौज का शासन हर्षवर्धन ने सम्भाला। यशोवर्मन उक्त मौखरि वंश का ही वंशज था। उसने कन्नौज को राजधानी बनाकर अपने राज्य का विस्तार किया और 'उत्तर भारत का श्रेष्ठतम शासक' कहलाया।

## यशोवर्मन का राज्य विस्तार :

पूर्व में उसके साम्राज्य की सीमाएँ बंगाल की खाड़ी तक चली गयी थीं। अपने विजय अभियान द्वारा पश्चिम में राजपूताना (वर्तमान राजस्थान) के कुछ भाग उसने अंपने शासन में शामिल कर लिये। उत्तर–पश्चिम में थानेसर, यमुना की घाटी और उससे भी आगे के कुछ क्षेत्र उसने विजित किये। दक्षिण में कम से कम ग्वालियर तथा कुछ और इलाकों तक भी अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया। अपने पौरुष के आधार पर वह 'सकल उत्तरापथ नाथ' कहलाया।

यशोवर्मन के राजकवि वाक्‌पति की रचना 'गौड़–वहो' (बंगाल नरेश का संहार) के अनुसार, एक वर्षा ऋतु की समाप्ति पर यशोवर्मन राज्य–विस्तार हेतु अपनी सेना के साथ कन्नौज से विजय–यात्रा पर निकला। वह महान वीर था और युद्ध संचालन में सिद्धहस्त। सोन की घाटी से गुजरकर वह ससैन्य

CC-0 Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

विंध्याचल पर्वत तक जा पहुँचा। यहाँ एक गुफा में निवास करने वाली सुविख्यात विंध्यवासिनी देवी (काली माता का एक स्वरूप) की आराधना की। वहाँ से वह मगध की ओर बढ़ा। उस समय मगध का राजा जीवित गुप्त (द्वितीय) था, जो माधव गुप्त का वंशज था और जिसका वर्चस्व पश्चिम बंगाल तक था। वह पहले तो भयभीत होकर पलायन कर गया किन्तु बाद में उसके अधीनस्थ अन्य राजा, जो उसके साथ ही भाग खड़े हुए थे, अपने इस कायरतापूर्ण कृत्य पर बड़ी शार्मिन्दगी महसूस करते हुए यशोवर्मन से दो–दो हाथ करने के लिए शीघ्र ही जीवित गुप्त (द्वितीय) के साथ लौट आये। घोर युद्ध हुआ। युद्ध में मगध नरेश जीवित गुप्त की भारी हानि हुई। उसके बहुंत अधिक सैनिक मारे गये। उनके भीषण संहार से धरती लाल हो गयी। यशोवर्मन के सैनिकों ने मगध नरेश का पीछा किया और उसका वध कर डाला। इसके बाद यशोवर्मन समुद्र तट की ओर बढ़ा। उसने वंश देश (पूर्वी बंगाल) भी विजित किया। वंग राज्य एक शक्तिशाली राज्य था। उसके पास युद्ध में लड़ने के लिए प्रशिक्षित हाथी अच्छी संख्या में थे। किन्तु वहाँ के राजा (डा.आर.जी.बस्क के अनुसार, यह खड्ग राजवंश का राजा राजराजभट्ट था) ने यशोवर्मन की अधीनता स्वीकार करने में ही अपना हित समझा और उसे अपना अधिपति मान लिया।

'गौड़–वहो' के अनुसार, तत्पश्चात यशोवर्मन जीत का डंका बजाता हुआ मलयगिरि (दक्षिण सह्याद्रि) के पार आ पहुँचा। उसने "पारसीक" लोगों पर आक्रमण किया। भयंकर संघर्ष और लम्बी लड़ाई के बाद यशोवर्मन ने उन्हें पराजित किया। (आर.सी. मोजूमदार के अनुसार, इन "पारसीक" लोगों से तात्पर्य उन दिनों सिन्ध आदि क्षेत्र पर आधिपत्य जमा चुके अरब शासकों से है, जिन्होंने उस समय कन्नौज तक को जीतने का असफल प्रयास किया तथा मुँह की खायी।)

फिर वह कुरुक्षेत्र से होकर महाभारत में वर्णित युद्धस्थलों की यात्रा करता हुआ अयोध्या की ओर बढ़ा। तब मंदराचल पर रहने वाले लोगों को अपना आधिपत्य स्वीकार करवाता हुआ हिमाचल के पर्वतीय क्षेत्र की ओर बढ़ा। इस प्रकार अनेक प्रदेशों को जीतकर यशोवर्मन अपनी राजधानी कन्नौज वापस

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

लौटा। तत्पश्चात उसने उन सभी के सभी राजाओं को, जिन्हें उसने पराजित कर अपने अभियान के दौरान अपने साथ चलने के लिए विवश किया था, अपने–अपने राज्य की ओर कृपापूर्वक वापस भेज दिया।

राजा यशोवर्मन को अपनी विजय–परिक्रमा पूर्ण कर कन्नौज लौटे अभी कुछ ही वर्ष हुए थे कि उसे समाचार मिला कि कश्मीर नरेश ललितादित्य की विशाल वाहिनी संचलन करती, दुंदुभि बजाती, यशोपताका फहराती कन्नौज राज्य की ओर बढ़ी चली आ रही है। अतः ललितादित्य की सेना ने ज्यों ही गंगा–यमुना के दोआब में प्रवेश किया, यशोवर्मन की सेना के साथ उसका भीषण युद्ध हुआ। यह युद्ध दो महत्त्वाकांक्षी राजाओं के बीच एक घोर संग्राम था, एक लम्बा और रक्तरंजित संघर्ष। ललितादित्य की सैन्यशक्ति यद्यपि विपुल थी, पर यशोवर्मन का सैन्यबल उस से भी अधिक था। उदाहरणार्थ यशोवर्मन के पास नौ सौ हाथी थे, जबकि ललितादित्य के पास केवल तीन सौ थे। किन्तु ललितादित्य की सेना अपेक्षाकृत अधिक प्रशिक्षित, युद्धकला विशारद तथा आधुनिकतम शस्त्रास्त्र से सज्जित होने के कारण हावी रही। युद्ध में संख्या बल के मुकाबले में प्रशिक्षण एवं शस्त्रास्त्रों की वरीयता का अधिक महत्त्व होता है। ललितादित्य की सेना ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) के बड़े–बड़े वीर योद्धाओं को कुब्ज (कुबड़ा) अर्थात् असहाय सा बना दिया। अतः यशोवर्मन ने नीतिमत्ता से काम लेना ही उचित समझा। उसने एक अश्वारोही दूत दौड़ाया, जो संधिसूचक सफेद झंडा लहराता हुआ शीघ्र ही ललितादित्य के पास जा पहुँचा। दोनों पक्षों में सन्धिवार्ता शुरू हुई। यशोवर्मन की ओर से अब और अधिक युद्ध करने के प्रति विरक्ति प्रकट की गयी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अरबों और तिब्बतियों की ओर से प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे विदेशी संकट के दृष्टिगत ललितादित्य व यशोवर्मन में उपरोक्त युद्ध से काफी पहले परस्पर मिलकर चलने के बारे एक समझ बनी थी। यह संकट कश्मीर व कन्नौज, इन दोनों राज्यों के अलावा चीन की सीमाओं पर भी दस्तक दे रहा था। अतः यह दोनों ही नरेश अरब और तिब्बत की विस्तारवादी कार्रवाइयों (जिन का वर्णन हम आगे चलकर करेंगे), को रोकने के लिए चीन को भी अपना सहयोगी बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। इस हेतु दोनों ने चीन के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collections. Digitized by eGangotri

शासक की ओर अपने–अपने तौर पर राजदूत (यशोवर्मन ने ७३१ ई. में और ललितादित्य ने ७३६ ई. में) भेजे भी थे, लेकिन चीन के राजा ने दोनों में से किसी के साथ कोई सैनिक सहयोग न किया था। उसने इन दोनों राजदूतों की आवभगत करने में तो कोई कसर न छोड़ी थी, किन्तु वह सैनिक गठबंधन में इनमें से किसी के साथ शामिल होने को तैयार न हुआ था।

चीनी इतिहासकार हुइ–चाऊ के अनुसार, यशोवर्मन और ललितादित्य के बीच यह विवाद, झगड़े का कारण बना था कि जालन्धर क्षेत्र पर किस का अधिकार हो। अतः जब दोनों राजाओं ने अपने–अपने राज्यों के विस्तार की कोशिश की तो दोनों में संघर्ष अनिवार्य हो गया था। परिणामस्वरूप उपरोक्त युद्ध हुआ और यशोवर्मन की ओर से सन्धि संकेत आने पर परस्पर वार्ता में यह तय हुआ कि यशोवर्मन सन्धि प्रस्ताव तैयार कर ललितादित्य के पास उसकी स्वीकृति हेतु भेजेगा। किन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था। संधिपत्र तैयार भी हुआ, उसे ललितादित्य के पास भेजा भी गया, किन्तु एक ऐसी अड़चन आ उपस्थित हुई कि जिस का परिणाम पुनः युद्ध के रूप में आ उपस्थित हुआ।

राजा यशोवर्मन द्वारा भेजे गये सन्धिपत्र को देखकर राजा ललितादित्य का सन्धि–विग्रह मंत्री (विदेशमंत्री) मित्रशर्मा उत्तेजित हो उठा। वह बोला, "महाराज, इस में लिखा गया है कि यह सन्धिपत्र राजा यशोवर्मन और राजा ललितादित्य की अनुमति से लिखा गया है। इस आलेख में यशोवर्मन का नाम पहले और महाराज जी (ललितादित्य) का शुभ नाम बाद में लिखकर यशोवर्मन ने युद्ध में पराजित होने के बावजूद कूटनीतिपूर्वक अपनी श्रेष्ठता प्रकट करनी चाही है तथा अपनी अहंकारपूर्ण मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया है।"

राजा ललितादित्य को अपने इस मन्त्री की बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता पर बहुत संतोष तथा प्रसन्नता हुई। उसने राजा यशोवर्मन के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई का आदेश दे दिया और मित्रशर्मा की पदोन्नति कर उसे पाँच पदों का अधिकारी घोषित किया। पहले से चले आ रहे अठारह प्रशासकीय विभागों से भी अधिक महत्त्व तब से इन पाँच नये विभागों ने ले लिया। यह थे :–
(१) महाप्रतीहारपीड़ा (राज दरबार की व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी),

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

(२) महासन्धिविग्रह (सुलह व युद्ध के मामलों का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी, (विदेशमन्त्री), (३) महाअश्वशाला (अस्तबल का मुख्य अधिकारी), (४) महाभांडागार (सरकारी मालगोदाम का सर्वोच्च प्रमुख) तथा (५) महासाधनभाग (सर्व संसाधन मुख्य अधिकारी)। प्रत्येक विभाग के प्रमुख 'शाही' वंश के व्यक्ति नियुक्त किये गये। आन्तरिक मोर्चे पर इस प्रकार की व्यवस्था इसलिए भी आवश्यक थी क्योंकि स्वयं ललितादित्य को दिग्विजय हेतु काफी लम्बे समय के लिए कश्मीर से बाहर रहना था।

दोनों राजाओं में पुनः युद्ध हुआ, जिसमें पुनः यशोवर्मन को मुँह की खानी पड़ी (७३३ ई.)। ललितादित्य अब कन्नौज के राज्य सिंहासन पर एक विजयी सम्राट् के रूप में विराजमान हुआ। चारों ओर उसकी जय–जयकार के स्वर गूँजने लगे। "कवि वाक्पति तथा भवभूति आदि महाकवियों द्वारा सेवित कवि यशोवर्मन, राजा ललितादित्य के अनुपम गुणों पर मोहित होकर ललितादित्य का स्तुतिपाठक बन गया। इस प्रकार यमुना नदी के उत्तरी तट से लेकर कालिका नदी (कालि नदी, जो गंगा के दायीं ओर उसके समानान्तर बहती हुई, कन्नौज के दक्षिण में थोड़े अन्तर पर गंगा में जा मिलती है) के तट तक का सारा कन्नौज राज्य राजा ललितादित्य के लिए घर के आँगन जैसा सुगम्य हो गया।"



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ४. दो आदर्श

ललितादित्य के सम्मुख दो शासक आदर्श थे। एक भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग का प्रमुख सम्राट् समुद्रगुप्त (३३५ से ३७५ ई.) और दूसरा महाराजा हर्षवर्द्धन (६०६ से ६४७ ई.)।

जिस समय समुद्रगुप्त गद्दी पर बैठा था, भारत छोटे–छोटे राज्यों में बँटा हुआ था, जिस कारण कोई भी विदेशी आक्रमणकारी पुनः सहज ही उन सबको रौंदता, लूटमार मचाता सम्पूर्ण भारत के लिए विपत्ति बन सकता था। इतिहास का यह सबक था। निकट अतीत में भी इसी कमजोरी का फल भारत भुगत चुका था, जब अशोक की मृत्यु के बाद क्रमशः यूनानी (ग्रीक), पहल्व (पार्थियन), शक (सिथियन) तथा कुशान वंश के विदेशी शासकों को यहाँ अधिपत्य जमाने का अवसर मिला था। समुद्रगुप्त ने अपने शासनकाल में उत्तर के नौ राज्यों और दक्षिण के ग्यारह राज्यों को एक शासन के अंतर्गत लाकर बलवान भारत की कल्पना को साकार करने की दिशा में भरपूर प्रयास किये।

उत्तरी भारत में उसने नागवंश के राजाओं पर विजय प्राप्त की, अहिच्छत्र (बरेली) के राजा अच्युत को हराया। मालव, यौद्धेय, आर्जुन, आभीर तथा काका आदि जातियों के राज्यों को अपने राज्य में शामिल किया। मालव उस समय पूर्वी राजपूताना (राजस्थान) में रहते थे (इसमें मेवाड़, टोंक और कोटा शामिल थे)। यौद्धेय उस समय बहावलपुर राज्य (अब पाकिस्तान) के समीप सतलुज के तट पर जोहियवर नामक स्थान पर रहते थे। आर्जुन जाति उस समय जयपुर के पास रहती थी। आभीर भीलसा और झाँसी के बीच में मध्यप्रदेश में थे। काका जाति भीलसा के उत्तर और पूर्व में आसपास के इलाके में रहती थी। उसने उत्तरी राजपूताना के कोट वंशीय राजा और बाँकुरा जिला (पश्चिमी

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

बंगाल) के राजा चन्द्रवर्मन को हराया। इन छोटे–छोटे राजाओं के अधिकतर प्रदेश गुप्त साम्राज्य में शामिल किये।

इसके बाद समुद्रगुप्त ने दक्षिण में कम से कम ग्यारह राजाओं को विजित किया किन्तु उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में शामिल नहीं किया। वे राजा समुद्रगुप्त को वार्षिक कर देते थे। उसंने कौशल (मुम्बई राज्य के दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर और सम्भलपुर जिले) के राजा महेन्द्र, महाकांतार (उड़ीसा में जेपोर राज्य) के राजा व्याघ्रराज, पिष्टपुर (गोदावरी जिला) के राजा महेन्द्रगिरी, वेंगी (कृष्णा और गोदावरी नदी के बीच में इलौर नामक स्थान के पास) के राजा हस्तिवर्मन को हराया।

उसने कांची के राजा विष्णु गोप, कुष्ठलपुर (उत्तरी अरकाट) के राजा धनंजय, देवराष्ट्र (वजीगापटम) के राजा कुबेर, पलक्क (तिल्लोर जिला) के राजा उग्रसेन इत्यादि पर भी विजय प्राप्त की। समुद्रगुप्त ने कई सीमा प्रदेशी राज्यों को भी विजय किया। उदाहरणस्वरूप, समतट (दक्षिणीपूर्वी बंगाल), कामरूप (ऊपरी आसाम), दवाक (नोगोंज जिला, आसाम), नेपाल और कर्तृपुर (जालन्धर में करतारपुर या उत्तर प्रदेश में कुमायूँ), गढ़वाल तथा रोहिलखण्ड इत्यादि के शासक भी उसके अधीन हुए।

इस प्रकार समुद्रगुप्त के राज्य की सीमाएँ पूर्व में दक्षिण पूर्वी बंगाल और असम (आसाम) तक फैली हुई थीं। उत्तर–पश्चिम में यह पूर्वी पंजाब तक अवश्य थीं। दक्षिण पूर्व में उसके साम्राज्य की सीमा उड़ीसा तक थी और दक्षिण में चिंगलीपुट जिले (तमिलनाडु) या उससे आगे तक फैली हुई थी। समुद्रगुप्त की विजयों से पश्चिमी मालवा तथा काठियावाड़ के शक राजा और पश्चिमी पंजाब तथा अफगानिस्तान के कुशान राजा बहुत भयभीत हो गये थे। उन्होंने अनेक तरीकों से समुद्रगुप्त को प्रसन्न करने का यत्न किया। उन्होंने समुद्रगुप्त को अपना सर्वोच्च शासक मान लिया था। उन्होंने अपने सिक्कों पर समुद्रगुप्त का नाम भी खुदवाया या समुद्रगुप्त के पास भेंट भेजी अथवा उससे अधिकारपत्र माँगे। इन अधिकार–पत्रों के द्वारा अधीन राजाओं को कुछ अधिकार गुप्तवंश के राजाओं द्वारा दिये जाते थे।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

समुद्रगुप्त ने श्रीलंका के साथ भी मित्रता स्थापित की थी। वहाँ के राजा

मेधवर्ण ने बौध गया में एक मठ बनवाने के लिए समुद्रगुप्त से आज्ञा माँगी और इस हेतु उसने बड़ी भारी एक भेंट समुद्रगुप्त के पास भेजी। समुद्रगुप्त ने मठ बनवाने के लिए उसे बहुत प्रसन्नतापूर्वक आज्ञा दे दी। श्रीलंका के राजा ने श्रीलंका के यात्रियों के लिए एक बड़ा भारी मठ बनवाया। इस प्रकार श्रीलंका के राजा के साथ समुद्रगुप्त के सम्बन्धों की घनिष्ठता और अधिक बलवती हुई। उपरोक्त विजयों के पश्चात समुद्रगुप्त ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उसने इस यज्ञ के उपलक्ष्य में नये सिक्के भी जारी किये, जिनमें एक तरफ अश्वमेध यज्ञ की गाथा और दूसरी तरफ घोड़े का चित्र बना हुआ था।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० आर० सी० मजूमदार के अनुसार 'समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व महान्, प्रभावक और अद्वितीय था।' डा० राधा कुमुद मुखर्जी के मतानुसार, "प्राचीन काल में राजनीतिक दार्शनिकों ने राजा के लिए चक्रवर्ती राज्य की स्थापना का आदर्श रखा था, वह उसी से प्रेरित था।" उसने छोटे–छोटे राज्यों की विघटनकारी प्रवृत्तियों को रोककर सारे भारत में एक ऐसा शासन स्थापित किया, जो आन्तरिक शान्ति कायम रख सकता था और विदेशी आक्रमणकारियों के मुकाबले एक ढाल सिद्ध हो सकता था। इतिहासकार स्मिथ के मतानुसार वह "भारत का नेपोलियन" था। वास्तव में वह नेपोलियन से भी महान् था और प्रखर राष्ट्र भक्ति की भावना से ओत–प्रोत था।

सम्राट् ललितादित्य का दूसरा आदर्श था महाराजा हर्षवर्द्धन। अपने बड़े भाई राज्यवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् न चाहते हुए भी वह स्थाण्वीश्वर (आधुनिक थानेसर) के राज्य सिंहासन पर बैठा था। छह वर्षों में ही उसने पंजाब, कन्नौज, गौड़ (पश्चिमी बंगाल), मिथिला (उत्तरी बिहार) तथा उड़ीसा को अपने राज्य में शामिल कर लिया। फिर थानेसर की बजाय कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। उसने मगध को भी विजय किया। मालवा के सिंहासन पर माधव गुप्त को बैठाया, जो उसका परम मित्र था। माधव गुप्त ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली और उसके प्रत्येक सैनिक अभियान में उचित सहायता दी। सिन्ध नरेश से भी राजा हर्ष को कर प्राप्त होता था।

हर्ष ने क़च्छ तथा सूरत को भी विजय किया। तत्पश्चात् वलभी के शासंक ध्रुव भट्ट (ध्रुवसेन द्वितीय) को पराजित किया। बाद में इन दोनों राजाओं

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

में सन्धि हो गयी। हर्ष ने वलभी नरेश ध्रुव भट्ट से ही अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। यह वैवाहिक सम्बन्ध बहुत महत्त्व का था। इसके द्वारा जहाँ वलभी नरेश राजा हर्ष का परम सहायक बना, वहीं पश्चिम की तरफ से हर्ष की सीमाएँ भी सुरक्षित हो गयीं और दक्षिण विजय के लिए एक अच्छा आधार प्राप्त हो गया, यद्यपि पुलकेशिन द्वितीय की ओर से प्रबल संघर्ष के कारण हर्ष दक्षिण दिशा की ओर न बढ़ सका।

हर्ष के महाकवि बाण भट्ट ने 'हर्ष चरितम्' में हर्ष द्वारा बर्फ से ढके एक पर्वतीय प्रदेश की विजय का भी वर्णन किया है। कुछ इतिहासकारों के मतानुसार यह प्रदेश नेपाल था। हर्ष ने कामरूप (आसाम) के राजा भास्कर वर्मन से गौड़ (पश्चिमी बंगाल) के राजा शशांक के विरुद्ध सन्धि की थी। इस प्रकार हर्ष ने अपने साम्राज्य की सीमाएँ पूर्व में पश्चिमी बंगाल, मगध, उड़ीसा तथा गंजाम तक बढ़ा ली थीं। उत्तर में उसके राज्य का विस्तार हिमालय तक और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक फैला हुआ था।

हर्ष ने फारस (ईरान) और चीन से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। चीन के शासक के पास उसने ब्राह्मण राजदूत भेजा था। चीन के शासक ने भी वांग ह्यू नट्सी की अध्यक्षता में कुछ दूत भेजे। हर्ष और ईरान के शासक एक–दूसरे के पास भेंटें भी भेजते रहे।

हर्ष ने उत्तरी भारत को विजय करके इसे राजनीतिक एकता प्रदान की थी। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद सारे देश में अनेक छोटे–बड़े राज्यों के उदय होने के कारण पुनः राजनीतिक अव्यवस्था फैल गयी थी। इसलिए उस काल में साहित्य तथा संस्कृति की प्रगति भी रुक गयी थी। ह्यूनसांग के अनुसार, सातवीं शताब्दी में भारत लगभग सत्तर (७०) राज्यों में विभक्त था। हर्ष के काल में उत्तर भारत में फिर से शान्ति और शासन सम्बन्धी एकरूपता की स्थापना हुई।

हर्ष न केवल एक महान् विजेता ही था, अपितु एक सफल प्रशासक तथा अच्छा साहित्यकार भी था। ह्यून सांग बताता है कि अपने राज्य का विस्तार करके उसने अपनी सेना में वृद्धि की। उसकी सेना में हाथियों की संख्या साठ हजार थी और घुड़सवार एक लाख थे। वह अनथक परिश्रम करता था। अच्छे

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कार्यों में नींद और भोजन को भी भूल जाता था। वह स्वयं राजपद के ऊँचे आदर्शों का पालन करता और शासन के प्रत्येक विभाग पर निगरानी रखता था। वह जनता के कष्टों को अधिक से अधिक दूर करने का यत्न करता था। दान देने में ह्यून सांग ने उसकी तुलना सुदत्त से की है, जिसने सोने की मोहरें बिछा कर महात्मा बुद्ध को ठहराने के लिए जेतवन को श्रावस्ती (उत्तर प्रदेश) के राजकुमार जेत से खरीदा था। सम्राट् हर्ष हर पाँच वर्ष के बाद धार्मिक सभा का आयोजन करता था। इसमें वह इन पाँच वर्षों में इकट्ठी हुई सम्पत्ति को दान में दे दिया करता था। अपनी छठी धार्मिक सभा में प्रयागराज में उसने अपना सर्वस्व दान कर दिया था और अपनी बहन से लेकर केवल पुराने कपड़े धारण किये थे।

भारतीय मानस में अभी भी यह धारणा स्थिर थी कि चक्रवर्ती सम्राट् को अपने अधीन किये गये राजाओं को उनके राज्य से वंचित करने की आवश्यकता नहीं। इतना ही पर्याप्त माना जाता था कि विजित राजा आधीनता स्वीकार कर ले, नाममात्र का एक वार्षिक कर देने का वादा करे और सम्राट् द्वारा आयोजित विशिष्ट समारोह के अवसर पर उपस्थित रहे। यह कभी नहीं सोचा गया था कि विजित राज्यों के राजाओं को, जो वहाँ लम्बे समय से राज्य करते आ रहे हों, उनकी राज्यसत्ता से अलग कर दिया जाये और उनका राज्य साम्राज्य में शामिल कर लिये जाये। अतः हर्ष ने विभिन्न राजाओं से केवल अपनी अधीनता ही स्वीकार करवायी और उन्हें अपने क्षेत्रों पर राज्य करने की अनुमति दी। केवल अपवाद मामलों में ही उन्हें अपने साम्राज्य में शामिल किया। अपने पूर्ववर्ती सम्राटों, जिन्होंने विक्रमी, शक व गुप्त संवत् चलाये थे, की तरह सम्राट् हर्ष ने भी अपने चक्रवर्ती होने की याद में राज गद्दी पर बैठने (६०६ ई.) से शुरू की गयी अपनी दिग्विजय के पूर्ण होने पर (६१२ ई.) हर्ष संवत् प्रारम्भ किया था।

एक महान् शासक, एक वीर सेनानी, महादानी, विद्वानों के संरक्षक, धार्मिक सहिष्णु तथा अति प्रतिभावान् व्यक्तित्व वाले महापुरुष के रूप में उसकी ख्याति भारतीय इतिहास में अमर है।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ५. चलो मित्र, मिल कर चलेंगे

ललितादित्य के सैनिकों ने कन्नौज नरेश यशोवर्मन को गिरफ्तार कर लिया था। वे उसे ले चले ललितादित्य के सम्मुख पेश करने।

यशोवर्मन अपनी पराजय पर दुःखी था। दोनों युद्धों में उसे काफी हानि उठानी पड़ी थी। भारी संख्या में उसके सैनिक हताहत हुए थे। उसका सब कुछ छिन चुका था, दुनिया ही उजड़ चुकी थी। किन्तु वह हताश न था। सैनिक उसे घेर कर ले जा रहे थे, किन्तु उसका सीना तना था, आँखों का तेज यथापूर्व था। न जाने क्यों उसे ललितादित्य के साथ अपने पुराने सम्बन्धों पर एक अनोखा सा विश्वास था, जो पराजित राजाओं में साधारणतः नहीं होता। मन ने एक बार तो उसे सचेत भी किया, 'क्या तुम जानते नहीं कि ललितादित्य के एक इशारे पर तुम्हारा सिर धड़ से अलग किया जा सकता है ? फिर भी तुम अविचल भाव से इन सैनिकों के साथ चले जा रहे हो ? स्वप्नजीवी नहीं, यथार्थजीवी बनो। सिर पर मंडराते संकट को पहचानों। अभी भी मौका है, इन सैनिकों को वंचिका देकर निकल भागो।' लेकिन उसकी आत्मा ने ललितादित्य पर अपने विश्वास को डिगने नहीं दिया। आत्मा की आवाज थी, 'ललितादित्य व्यक्ति का और परिस्थिति का भी सच्चा पारखी है। इस संघर्ष से पहले वह मेरा साथी था। हम दोनों ने मिलकर कुछ निश्चय किये थे, कुछ तिब्बतियों के बारे में, कुछ अरबों के बारे में। कुछ लक्ष्य तय किये थे। उनकी प्राप्ति के लिए परस्पर मिलकर चलने की सोच बनी थी। उसे भूलना इतना आसान नहीं होगा किसी के लिए भी। न उसके लिए, न मेरे लिए।'

और जब उसे ललितादित्य के सामने पेश किया गया तो वह मुस्करा रहा था। दोनों में से कोई कुछ न बोला। मुस्कराहट के आदान–प्रदान ने बहुत कुछ कह दिया। राज दरबार में छाया सन्नाटा अपने–आप में ही बहुत कुछ बोल रहा

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

था। ललितादित्य ने मन ही मन यशोवर्मन से पूछा, 'बोलो, तुम्हारे साथ क्या सलूक किया जाये ?' और मन ही मन उसे उत्तर भी मिला, 'जैसे एक राजा दूसरे राजा के साथ व्यवहार करता है।' उसने यशोवर्मन को अपनी बाँहों में भर लिया। चारों ओर छाये भय और आतंक के बादल छँट गये। उनका स्थान प्रसन्नता और आह्लाद ने ले लिया। परस्पर विश्वास की किरणों से अविश्वास का अन्धकार लुप्त हो गया। दोनों महान् थे। एक की विजय दूसरे की पराजय न रही, परस्पर आत्मीयता की ही विजय सिद्ध हुई। यशोवर्मन ने अपने सभी पूर्व विजित क्षेत्रों पर ललितादित्य की सत्ता दृढ़ कराने में सहयोग देने का भरोसा दिलाया। ललितादित्य ने कहा, "चलो मित्र, मिल कर चलेंगे।"

ललितादित्य की दिग्विजय में यशोवर्मन साथ हो लिया। ललितादित्य व्यक्तिगत तौर पर यशोवर्मन का आदर करता था। पराजित और पराधीन हुए यशोवर्मन के पतन के बावजूद ललितादित्य ने उसे कन्नौज के स्वतन्त्र राजा की अपेक्षा भी अधिक सम्मान व प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दे दिया। अपने अधिराज्य के एक बड़े भाग के राज्यपाल के रूप में उसका पुनः अभिषेक किया। 'एक–एक, ग्यारह' की उक्ति सार्थक हुई। 'औ–कोंग की यात्राएँ' (Travels of Ou-Kong) ने अंकित किया कि ललितादित्य मुक्तापीड़ और मध्य भारत के शासक (यशोवर्मन) परस्पर सहयोगी थे और इन दोनों ने मिलकर तिब्बत की ओर के (आक्रमणों को रोकने के लिए) पाँचों दर्रों को बन्द कर दिया था।

इस प्रकार अपने मार्ग में हिमालय पर्वत सदृश विघ्नरूप यशोवर्मन को लाँघ कर गंगा की धारा जैसी विस्तृत राजा ललितादित्य की सेना आगे बढ़ चली। यशोवर्मन द्वारा पहले जीते जा चुके क्षेत्र ललितादित्य की कन्नौज–विजय के साथ ही उसके आधिपत्य में आ गये थे, तो भी ललितादित्य ने उन पर अपनी आधिकारिता की सम्पुष्टि के लिए अपने अधीन हुए यशोवर्मन को साथ लेकर अपना विजयचक्र पूर्ण करने हेतु पूर्वी तट की ओर प्रस्थान किया।

ललितादित्य की सेना ने कलिंग राज्य, जो आज उड़ीसा के नाम से पहचाना जाता है, विजय किया। फिर आगे बढ़कर वह समुद्र के तट पर जा पहुँची। उमड़–उमड़ कर आकाश को छूने का प्रयत्न करतीं सागर की लहरें अनोखा दृश्य उपस्थित कर रही थीं। सेना में शामिल हाथियों को यहाँ की जलवायु अत्यन्त रास आयी। वे तो वहाँ से हिलने का नाम तक न लेते थे, वहीं रह जाना चाहते थे। महावतों ने बड़ी कठिनाई से उन्हें किसी तरह वहाँ से आगे बढ़ाया।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

इस दौरान गौड़ मण्डल (पश्चिमी बंगाल राज्य) के राजा ने भी ललितादित्य की आधीनता स्वीकार करते हुए अपनी हाथी सेना उसके सुपुर्द कर दी। ललितादित्य ने गौड़ नरेश को विजय यात्रा में अपने साथ चलने के लिए विवश किया। गौड़ नरेश को संशय था कि ललितादित्य उसे जीवित नहीं छोड़ेगा। इस पर ललितादित्य ने 'विष्णु परिहास केशव' की मूर्ति की सौगन्ध खाकर उसे रक्षा का आश्वासन दिया। जयघोष करती सेना आगे बढ़ी। सेना के आगे चलने वाले हाथियों के झुण्ड के झुण्ड समुद्र तट के घने जंगलों में से बड़ी सरलता से शेष सेना के लिए मार्ग बनाते हुए चले जा रहे थे। अब यह प्रस्थान दक्षिण दिशा की ओर था।

प्राचीन काल में सैन्यबल में पैदल व घुड़सवार सेनाओं के साथ हाथियों की सेना का भी विशेष स्थान रहा है। आचार्य कौटिल्य (चाणक्य) ने भी अपने 'अर्थशास्त्र' में हाथियों की युद्ध सम्बन्धी शिक्षा पर बहुत अधिक बल दिया है तथा लिखा है कि हाथियों की उपयोगिता जंगलों और कीचड़ वाली भूमि में सर्वाधिक होती है। इस प्रकार की भूमि पूर्वी भारत तथा अन्य तटीय क्षेत्रों में बहुत पायी जाती है। अतः हाथियों की उपयोगिता उपरोक्त क्षेत्र में विशेष थी। उन दिनों की युद्ध प्रणाली में हाथियों की महत्ता का एक और कारण यह भी था कि युद्ध में उनकी कतारें एक दुर्ग के समान काम देती थीं। शत्रु को उन्हें तोड़ने में बहुत कठिनाई होती थी। उन पर हौदों में बैठे सवार शत्रु पर पर्याप्त ऊँचाई से तीरों और भालों की निरन्तर वर्षा कर उसे भारी हानि पहुँचा सकते थे। दुर्गों के द्वारों को भी हाथियों की टक्करों से ही तोड़ा जाता था। हाथियों का यह महत्त्व केवल हमारे देश में ही प्रचलित नहीं था, बल्कि यूरोप और फारस के शासक भी इनका महत्त्व भलीभाँति समझते थे। इसी कारण सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य से ५०० हाथी लिये थे। ईरान आदि देशों में युद्ध के लिए भारतीय हाथियों का प्रयोग बराबर होता रहा है। हाथियों की उपयोगिता सेना का भारी सामान ढोने के लिए भी थी।

उड़ीसा के समुद्र तट से मार्ग बनाती ललितादित्य की विशाल सेना शत्रुओं को भयप्रकम्पित करती व शरणागतों के लिए अनुकम्पा की वर्षा करती अग्रसर थी। इसी बीच उसे उन दिनों कर्नाटक में शासन कर रही रट्टा रानी की ओर से सहायता हेतु याचना प्राप्त हुई।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ६. दक्षिण विजय

रट्टा रानी कौन थी ? वह थी चालुक्य राजवंश की सुन्दर राजकुमारी भवगणा, जिसका राष्ट्रकूट राजवंश के शासक इन्द्र प्रथम से राक्षस–विवाह हुआ था।

ईस्वी सन् की छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक चालुक्य राजवंश के राजा दक्षिण में सबसे शक्तिशाली थे। इस राजवंश की एक शाखा, वातापी (बादामी, जिला बीजापुर, आन्ध्र प्रदेश), इतिहास में अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस वंश के विक्रमादित्य प्रथम (६५५–६८१ ई.) ने अपने छोटे भाई धराश्रय जयसिंह वर्मन को गुजरात प्रदेश का शासक नियुक्त किया, जिसकी राजधानी नवसारिका या नवसारी थी। धराश्रय के बाद मंगलराज विनयादित्य ने शासन सम्भाला था। उपरोक्त राजकुमारी भवगणा इसी चालुक्य राजा की सुपुत्री थी, जिसकी सुन्दरता तथा अन्य गुणों पर मोहित होकर राष्ट्रकूट वंश के उपरोक्त राजा इन्द्र प्रथम ने उसका अपहरण कर उससे राक्षस–विवाह किया था।

पति की मृत्यु के बाद रानी भारी कठिनाइयों में फँस गयी थी। ललितादित्य ने तब दक्षिण तथा कोंकण में, कर्नाटक की इस रानी की ओर से सहायता की याचना पर उसके पक्ष में युद्ध किया। इस प्रकार ललितादित्य को 'दक्षिण विजय' में जहाँ रट्टा रानी के पति के कुल राष्ट्रकूट राजवंश का सहयोग मिला व दक्षिण के दुर्गम रास्तों को उसने बिना अवरोध के पार किया, वहाँ रट्टा रानी के पितृकुल चालुक्य राजवंश की भी स्वाभाविक सहानुभूति प्राप्त हुई तथा उस राजवंश से भी मित्रता स्थापित हुई, क्योंकि इस समय तक मंगलराज विनयादित्य इन्द्र प्रथम के प्रति अपना विरोध दूर कर चुका था। इससे ललितादित्य की ख्याति को बल मिला, प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। रट्टा रानी का

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

प्रभुत्व विन्ध्याचल की पहाड़ियों तक फैला था तथा उक्त दोनों राजवंशों का गुजरात तथा काठियावाड़ के कुछ भागों पर नियन्त्रण बना हुआ था।

श्री रणजीत सीताराम पंडित के अनुसार, "रट्टारानी राष्ट्रकूट राजवंश की शासिका थी, जो चालुक्य काल (५५०–७५७ ई.) के अन्त में महाराष्ट्र में शासन करता था और ९५३ ई. तक सत्ता में रहा। एलोरा की भव्य मूर्तिकला, कैलाश मन्दिर (७५७–७८३ ई.) तथा एलीफेंटा की गुफाओं में शैव देवालय (८५०–९०० ई.) उसी कालखण्ड के हैं। राष्ट्रकूट राजवंश ने कर्नाटक को विजय कर लिया था।"

ललितादित्य के प्रति कृतज्ञता की भावना से अभिभूत हो "लम्बी–लम्बी जटाएँ धारण करने वाले कर्नाटक क्षेत्र के निवासियों ने स्वर्णकेतकी जैसे सुन्दर केश–भूषणों को त्याग कर राजा ललितादित्य के चरणों पर गिरकर उसके प्रताप को ही अपना आभूषण बना लिया।" राजतरंगिणी के रचयिता कविवर कल्हण के शब्दों में, "चंचल नयनों वाली एवं महातेजस्विनी रट्टा रानी, दक्षिणापथ पर राज्य करती थी। भगवती दुर्गा के समान वीर रट्टा देवी ने अपने प्रबल प्रभाव द्वारा विन्ध्यवन से होकर गुजरने वाले सभी मार्गों को ललितादित्य के लिए निष्कंटक कर दिया, उसकी राह के काँटे बने शत्रुओं को ठिकाने लगा दिया। राजा ललितादित्य को प्रणाम करते समय उस राजा के चरण–नखरूपी दर्पण में अपनी आकृति प्रतिबिम्बित होती देखकर वह रानी भी बहुत प्रसन्न हुई।"

ललितादित्य के सैनिकों ने वहीं पर ताड़ वृक्षों की छाया में डेरा डाल दिया और नारियल के फलों का सुस्वादु जल पीकर कावेरी क्षेत्र का शीतल पवन सेवन करके अपनी थकावट मिटाई। मलय पर्वत के चन्दन वृक्षों की शाखाएँ त्यागकर रेंगते हुए काले–काले साँप उस समय ऐसे दिखाई दे रहे थे मानो वह राजा ललितादित्य के डर से वहाँ के चन्दन वृक्षों द्वारा फेंक दी गयी तलवारें हों। जैसे किसी छोटी नदी के पेट में पड़े पत्थरों पर पैर रखकर लाँघते हुए उसे पार किया जाता है, उसी प्रकार अनेक छोटे–छोटे द्वीपों को लाँघता हुआ वह पराक्रमी राजा सभी समुद्री द्वीपों में बड़ी आसानी से घूमने–फिरने लगा।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

"विजयेच्छुकों में अग्रणी राजा ललितादित्य समुद्र की बड़ी–बड़ी लहरों

के गम्भीर घोष रूपी जयजयकार एवं मंगलगान से प्रसन्न होकर वहाँ से पश्चिम दिशा की ओर मुड़ पड़ा। जैसे सूर्य भगवान् का प्रबल तेज उनके रथ में जुटे सातों अश्वों पर पड़ने के बाद सात द्वीपों में फैल जाता है, वैसे ही राजा ललितादित्य का प्रताप सात क्रमुक देशों तथा सात कोंकण आदि देशों में व्याप्त होकर सर्वत्र फैल गया।" इस प्रकार दक्षिण विजय के अनन्तर ललितादित्य की कश्मीर की ओर वापसी यात्रा शुरू हुई।

वायु के झोंके से जहाँ पश्चिमी समुद्र की ऊँची–ऊँची तरंगें उछल रही थीं, उन्हीं के बीच में विद्यमान दिव्य द्वारका नगरी की ओर जाने के लिए ललितादित्य तथा उसके सैनिक अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे।

दक्षिण विजय के पश्चात सम्राट् ललितादित्य की सेना के सम्मुख यद्यपि तत्काल कोई अभियान न था, तो भी उसका विविध प्रकार का नित्य अभ्यास प्रातः सायं अवश्य चलता रहा। सम्राट् स्वयं तथा सेनापति चंकुण दोनों ही इस बारे में बहुत सचेत थे और ऐसे अभ्यासों के नित्य निरीक्षण व निर्देशन से कभी न चूकते। द्वारका की ओर चलने की तैयारियाँ होने लगीं तो प्रस्थान से कुछ दिन पहले सैनिकों के प्रातःकालीन अभ्यास के बाद सम्राट् ललितादित्य ने तद्विषयक आवश्यक निर्देश देने के लिए सेनापति चंकुण को अपने शिविर में बुलाया। रट्टा रानी को भी इसी समय आमन्त्रित किया गया। इन तैयारियों में सहायतार्थ वह अपनी सेना सहित सम्राट् के सैनिक शिविर से कुछ दूरी पर पहले से ही पड़ाव डाले थी। प्रस्थान सम्बन्धी आवश्यक सावधानियों के बारे में बातचीत के पश्चात चंकुण ने द्वारका के प्रति अपनी जिज्ञासा निवेदन की कि 'हमारे सभी सैनिकों में इस स्थान के दर्शनों के लिए बड़ा उत्साह क्यों कर है ?'

द्वारका का विषय सम्राट् ललितादित्य तथा रट्टा रानी दोनों के लिए अति प्रिय था। ललितादित्य विष्णुभक्त था, विष्णु अवतार केशव (श्रीकृष्ण) उसके आराध्य थे। रट्टा रानी पर भी विपुल भक्ति–संस्कार थे। उसका पैतृक कुल चालुक्य वंश विष्णुभक्त था तो पतिकुल राष्ट्रकूट वंश स्वयं को महाभारतकाल के यदुवंशियों से जोड़ता था। अतः यह धार्मिक चर्चा रानी के लिए भी मनभावन थी।

चंकुण तुःखार निवासी था तथापि वह सम्राट् ललितादित्य के सान्निध्य

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

में आकर भारतीय वाङ्मय एवं इतिहास में रुचि लेने लगा था। यदा–कदा इस बारे में वह कई प्रश्न सम्राट् अथवा अन्य हिन्दू विद्वानों से किया करता। सम्राट भी उसे प्रोत्साहित करता। उसके प्रश्न के उत्तर में सम्राट् ने बताया, "सौराष्ट्र के पश्चिम में समुद्र किनारे बसी हुई द्वारावतीपुरी द्वारका नाम से प्रसिद्ध है। यह भगवान् श्रीकृष्ण की राजधानी थी। पुराणों के अनुसार इसी स्थान पर रैबत नामक राजा ने दर्भ (कुश) बिछाकर यज्ञ किया था। अतः इस भूमि को कुशस्थली नाम भी प्राप्त हुआ। इसी स्थान पर कुश नामक राक्षस का वध भी हुआ था। द्वारकाधीश्वर श्री रणछोड़राय जी (श्रीकृष्ण) का उत्तुंग और विशाल मन्दिर द्वारका में विशेष रूप से दर्शनीय है। निष्पाप कुंड़, श्रीकृष्ण का महल तथा श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अन्यान्य विभूतियों की मूर्त्तियाँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं। सप्त मोक्षपुरियों में द्वारावती की भी गणना होती है।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ७. गुजरात व मालवा विजय

सम्राट् ललितादित्य ने रट्टा राज्ञी से प्राप्त मान–सम्मान, सद् व्यवहार तथा धार्मिकता आदि से प्रभावित होकर रानी के सभी शासनाधिकार उसी के पास रहने दिये तथा उसके बेटे दंतीदुर्ग के सिंहासनारूढ़ होने में परोक्ष सहायता प्रदान की। ललितादित्य ने ससैन्य आगे बढ़कर गुजरात विजय किया। लाट (दक्षिण गुजरात) के शासक कर्क (कक्का या कय्या) को कश्मीर लाया गया और ललितादित्य की सेना में अधिकारी नियुक्त किया गया। द्वारका के मन्दिरों के दर्शन के बाद ललितादित्य ने उज्जयिनी (उज्जैन) की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में सम्राट् ने सेनापति चंकुण द्वारा जिज्ञासा प्रकट करने पर उसे बताया, "यह उज्जयिनी नगरी प्राचीन सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी गणना भी मोक्षदायिनी सात पुरियों में होती है। इसी स्थान पर भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर पर विजय प्राप्त की थी। भगवान् के बारह ज्योतिर्लिंगों में महाकाल नामक शिवलिंग का यह स्थान है। भगवती सती की बाहु का एक अंश (कुहनी) यहाँ पर गिरा था। अतः यह ५२ शक्तिपीठों में से एक प्रमुख पीठ है। शैव पुराणों में महाकाल का महात्म्य वर्णन करने वाली अनेक अद्भुत कथाएँ बतायी गई हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ हरसिद्धि का मन्दिर, सांदीपनी आश्रम (जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण विद्यार्थी रहे), चित्रगुप्त मन्दिर, भर्तृहरि गुफा, सिद्ध वट आदि प्राचीन स्थान भी दर्शनीय हैं। सिद्धवट वृक्ष क्षिप्रा नदी के किनारे अनादिकाल से विद्यमान बताया जाता है। जिस प्रकार प्रयाग में अक्षय वट, नासिक में पंचवट, वृंदावन में वंशीवट तथा गया में गयावट का धार्मिक महत्त्व है, उसी प्रकार यहाँ के सिद्धवट का महत्त्व है। उज्जयिनी भारत के उन चार प्रमुख तीर्थ स्थानों में से है, जहाँ हर बारह वर्ष के बाद, जबकि गुरु बृश्चिक राशि में प्रवेश करता है, कुम्भ का मेला लगता है। यहाँ का कुम्भ 'सिंहस्थ'

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कहलाता है, जबकि दक्षिण व उत्तर भारत के लाखों धर्मपरायण नर–नारी यहाँ आकर पवित्र क्षिप्रा नदी में स्नान कर भगवान् महाकाल तथा अन्य मन्दिरों के दर्शन व दान–पुण्य करते हैं।

"मौर्य शासनकाल से मालव प्रदेश (इसमें सौराष्ट्र और लाट यानी आधुनिक गुजरात, सिन्ध और कोंकण का समावेश था) की राजधानी उज्जयिनी ही चली आ रही है। सम्राट् अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा कन्या संघमित्रा ने इसी नगरी में प्रव्रज्या (संन्यास) ग्रहण की थी। फिर यहाँ शकों का राज्य स्थापित हो गया। सम्राट् विक्रमादित्य ने शकों को परास्त कर इस स्थान को परतन्त्रता से मुक्त किया था। बाद में शकों ने पुनः (ईसा की पहली शताब्दी में) उज्जयिनी पर अधिकार कर लिया और तीन शताब्दियों तक निरन्तर उन्हीं का आधिपत्य जारी रहा। चौथी शताब्दी में गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को मार भगाया। तब से उज्जयिनी विद्या और कलाओं का केन्द्र स्थान बना रहा है। सारांश यह कि इतिहास, भूगोल, संस्कृति तथा साहित्य की दृष्टि से उज्जयिनी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। महाकवि कालिदास ने भी अपने मनोहर काव्यग्रन्थों में इस स्थान का वर्णन अति आत्मीयतापूर्वक किया है।"

गुजरात विजय (लगभग ७४०–७४१ ई.) के बाद ललितादित्य की सेनाओं ने विन्ध्याचल पर्वत को पार करके अब उज्जयिनी के महत्त्वपूर्ण स्थान को भी अपने आधिपत्य में ले लिया। महाकाल की पूजा–अर्चना के पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण मालवा प्रदेश विजय किया। ललितादित्य का विजय अभियान उसकी प्रबल सैन्यशक्ति, अद्वितीय क्षात्र प्रतिभा तथा नीतिमत्ता के कारण सफलतापूर्वक प्रगति की ओर अग्रसर था। उसका विश्लेषण था कि भारतवर्ष भौगोलिक व सांस्कृतिक दृष्टि से तो एकसूत्र में आबद्ध एक राष्ट्र है ही, राजनीतिक दृष्टि से भी यह एक शक्तिशाली केन्द्र से नियन्त्रित होना आवश्यक है। उसकी विजय यात्राओं में यही एक भाव विशेष रूप से अन्तर्निहित था। इतिहास उसे बता रहा था कि गत लगभग एक सौ वर्ष से विश्व की चार बड़ी शक्तियाँ मध्य एशिया में अपना अधिकार जमाने के लिए प्रतिस्पर्धात्मक रूप से संघर्षरत थीं तथा अनेकानेक स्थानों पर आक्रमणों में व्यस्त थीं। यह चार शक्तियाँ थीं अरब, तुर्क, तिब्बत तथा चीन। ललितादित्य की चिन्ता थी कि "इन शक्तियों की तुलना में हम कहाँ खड़े हैं ? सर्वथा बिखरे हुए, परस्पर लड़–भिड़ रहे छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त, जिन्हें कोई भी विदेशी शक्ति सहज ही एक–एक कर अपना शिकार

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

बना सकती है। अतः देश के विभिन्न शासक बेशक अपनी स्थानीय प्रभुता को बनाये रखें, अपनी विविधताओं को सँजोए रखें, किन्तु उनका संगठित स्वरूप एक शक्तिशाली केन्द्र के रूप में अवश्य विद्यमान होना चाहिए।"

ललितादित्य के प्रयास सभी क्षेत्रीय राज्यों की विविधता में राजनीतिक एकता की स्थापना हेतु थे। इसीलिए वह अधिकांशतः सभी राजाओं को उनकी अपनी–अपनी परिधि में शासन–सूत्र पूर्ववत् थमाता जा रहा था। उन सभी राज्यों का एक शक्तिशाली नियन्त्रण केन्द्र स्थापित करने की प्रबल इच्छा थी उसकी। कन्नौज विजय कर उसने वहाँ के शासक यशोवर्मन को अपना स्तुति–पाठक तो बनाया ही, साथ ही यशोवर्मन के विजित प्रदेशों पर भी उसका सैद्धान्तिक रूप से अधिकार हो गया था। अपने इस अधिकार को पूर्णतः कार्यान्वित करने के निमित्त वह पूर्व दिशा की ओर बढ़ा था। मगध और गौड़ राज्यों के साथ कामरूप और कलिंग को भी विजय किया था। उसके बाद दक्षिण की ओर बढ़ा और कावेरी तक चला गया था। वहाँ के शासन की बागडोर रट्टा रानी के ही हाथों में थमा दी थी। दक्षिण विजय के पश्चात् उसने गुजरात, काठियावाड़, मालवा और मारवाड़ प्रदेश जीते, वलभी (वलभी के राज्य में काठियावाड़ प्रायद्वीप और भड़ौच तथा सूरत के जिले थे। इसकी राजधानी का नाम भी यही था।) के मैत्रकों तथा चित्तौड़गढ़ के मौर्यों की डगमगाती शक्ति को थर्रा डाला, निकटवर्ती सभी शासकों को परास्तप्राय मानकर कश्मीर वापस आ पहुँचा।

ललितादित्य यद्यपि अनेक वर्षों तक कश्मीर से अनुपस्थित रहा था, तथापि उसका अति विश्वस्त तथा योग्य मन्त्री मित्रशर्मा उसके निरन्तर सम्पर्क में रहा था। कश्मीर के गिर्द मण्डराती अरब व तिब्बती शक्तियों की गतिविधियों से मित्रशर्मा सम्राट् को सुपरिचित रखता रहा था। इन्हीं शक्तियों के आशंकित आक्रमणों को ध्यान में रखकर ही चीन के साथ अपने दौत्य सम्बन्ध स्थापित करने तथा कूटनीतिक सम्बन्ध सुदृढ़ कर उसे अपना सहयोगी बनाने के उद्देश्य से ही सम्राट् के आदेश पर मित्रशर्मा चीन (७३६ ई.) गया था। कश्मीर के दक्षिण पश्चिम में स्थित सिन्ध प्रदेश में तो अरबों की गतिविधियाँ काफी समय से चिन्ता का विषय थीं।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ८. प्रसंग : अरबों के भारत आक्रमण का

धर्मांन्धता की चरम सीमा तक पहुँचे अरब लोग अपने नये मजहब इस्लाम को फैलाने के लिए निकल पड़े थे। हजरत मुहम्मद साहिब की मृत्यु (६३२ ई.) के बाद उनके धर्म–उत्तराधिकारी खलीफा कहलाये। पहला उत्तराधिकारी खलीफा अबू बक्र था। वह ६३२ ई. से ६३४ ई. तक खलीफा रहा। उसकी ६३४ ई. में मृत्यु के बाद उमर खलीफा बना और ६४४ ई. तक रहा। खलीफा उमर के काल में अरबों ने सीरिया, आरमीनिया, मेसोपोटेमिया, ईरान, मिस्त्र इत्यादि पर विजय प्राप्त की। येरूशलम को भी ६३८ ई. में विजय कर लिया गया। सारांशतः हजरत मुहम्मद साहिब की मृत्यु के बाद सवा सौ वर्ष के अन्दर इस्लाम काशगर से लेकर मिस्त्र तक और सिन्ध से लेकर स्पेन तक फैल गया।

अरबों ने ६३७ ई. में ईरान के राजा को युद्ध में परास्त करके पाँच वर्ष के अन्दर–अन्दर हिरात तक का इलाका अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। ६५० ई. तक उन्होंने ओक्सस नदी तथा हिन्दूकुश पर्वत के मध्य का सारा इलाका विजय कर लिया। उन्होंने जल और थल मार्ग से लूट के निमित्त भारत के सिन्ध प्रदेश पर अनेक धावे किये थे, किन्तु उन्हें ७१२ ई. तक कोई विशेष सफलता न मिली थी। राजा दाहिर सिन्ध प्रदेश का शासक था। उसकी राजधानी अलोर थी। वह एक न्यायी और शक्तिशाली हिन्दू राजा था। यह प्रदेश उसके शासनकाल में अपनी सुन्दर झीलों और उर्वरा भूमि के कारण विख्यात था। उसके सीमारक्षक अरबी लुटेरों पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। वे उपद्रवियों को दण्ड भी देते थे। इससे इराक के शाह हज्जाज को क्लेश होता था, क्योंकि इससे अरबी दल भारतीय नागरिकों के साथ दुर्व्यवहार तथा मनमानियाँ नहीं कर सकता था। इसलिए उसने भयंकर प्रतिशोध की सौगन्ध

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

खायी थी।

हज्जाज सिन्ध पर आक्रमण के लिए एक के बाद एक भेज गये अपने पूर्ववर्ती सरदारों से निराश हो चुका था। अतः अब उसने अपने दामाद मुहम्मद–बिन–कासिम को अपनी सेना का सरदार नियुक्त करने का विचार किया। उसने पहले उबैदुल्ला और फिर बुदैल को समुद्री मार्ग से देबाल (देवालयपुर, वर्तमान कराची) पर धावा बोलने के लिए भेजा था पर दोनों ही वहीं समा गये थे, दफन हो गये थे। भारतीय सेना के साथ मुकाबले में उनकी जलसेना नष्ट हो गयी थी।

इन्हीं दिनों वालिद खलीफा (७०५ ई. से ७१५ ई.) बना। हज्जाज के कहने पर उसने मुहम्मद–बिन–कासिम को सिन्ध जीतने के लिए नियुक्त किया। पैदल और घुड़सवारों की विशाल सेना लेकर मुहम्मद, शिराज की ओर बढ़ा यहाँ उसने अबुल् असवाद जान की प्रतीक्षा की। असंख्य लुटेरों की एक बड़ी टोली लेकर वह मुहम्मद से आ मिला। बड़े परिश्रम और सूझ–बूझ के साथ इस अभियान की तैयारी की गयी थी। छोटी–छोटी बातों का भी ध्यान रखा गया था। यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति को सूई और धागा तक दिया गया था। जान और मुहम्मद की संयुक्त सेना मकरान होकर आगे बढ़ी। उस समय अफगानिस्तान भारत का ही भाग था। अतएव मुहम्मद–बिन–कासिम अफगानिस्तान की ओर बढ़ा। पहला धावा कन्नाजउर पर हुआ। फिर वे अरमेल पर टूटे। हत्या और बलात्कार के "छीन–झपट व्यापार" में भाग लेने एक तीसरा लुटेरा दल इनसे यहाँ आ मिला। इस दल का नेता भी एक मुहम्मद ही था। यह हारून का पुत्र था। मगर भारतीय सीमा रक्षकों ने इसे मार काटकर धूल में मिला दिया। कम्बालि में उसे दफनाया गया। मुहम्मद–बिन–कासिम के नेतृत्व में विशाल सेना ने देबाल (देवालयपुर, वर्तमान कराची), नीरून (यह आधुनिक हैदराबाद, सिन्ध, के पास एक नगर था), सिविस्तान (शिवस्थान) और कुछ अन्य गढ़ अपने कब्जे में ले लिए। चचनामा के लेखक के अनुसार, इन लड़ाइयों में विश्वासघात का विशेषतः बौद्धों द्वारा, कुछ कम भाग न था। इसी समय मुहम्मद को हज्जाज का पत्र मिला। उसमें उसने उसे नीरून लौटकर और सिन्ध नदी पार करके दाहिर से युद्ध करने का आदेश दिया था। उत्तर में मुहम्मद ने लिखा था, "काम

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

भली–भाँति चल रहा है। मौज का दरिया बराबर बह रहा है। आपके तेजस्वी विवेक को यह मालूम हो कि रेगिस्तान को रौंदते, खतरनाक मोड़ों को पार करते हुए मैं सिन्ध में सीहूँ (सिन्ध नदी) के उस स्थान पर आ पहुँचा हूँ, जिसे मिहरान कहते हैं। बुधिया के समीप बघरूर (नीरून) के ठीक विपरीत मिहरान का भाग ले लिया है। प्रतिरोधियों को बन्दी बना लिया गया है। बाकी भय से भाग गये हैं। अमीर हज्जाज का आदेश पाकर हम नीरून लौट आए हैं। यह राजधानी के काफी समीप है। हमें आशा है कि अल्लाह की अनुकम्पा, शाही सहयोग और तेजस्वी शाहजादे के सौभाग्य से काफिरों के सुदृढ़ दुर्गों को जीता जायेगा, नगरों पर अधिकार किया जायेगा और हमारे खजाने लबालब भरकर छलक जायेंगे। शिवस्थान और सीसम दुर्ग ले लिये गये हैं। काफिरों को या तो मुसलमान बना लिया गया है या फिर खत्म कर दिया गया है। देव प्रतिमाओं को चूर–चूर कर मन्दिरों के बदले मस्जिद आदि बना दी गयी हैं, मीनार खड़े किये गये, खुतबा (शासक की प्रशंसा व स्तुति) पढ़ा गया, अजान–मंच बनाया गया ताकि निर्दिष्ट समय पर भक्ति प्रदर्शित की जा सके। प्रति प्रातः–सायं सर्वशक्तिमान् की तकबीर और नमाज पढ़ी जाती है।"

सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक के मतानुसार, "मुहम्मद–बिन–कासिम के पत्र से दो बाते स्पष्ट हैं:–

(१) मुसलमान इतिहासकार जब यह दावा करते हैं कि इस्लामी विजेताओं ने मस्जिदों का निर्माण किया तो इसका मतलब सिर्फ यही होता है कि पूर्ववर्ती मन्दिरों में मीनार और चबूतरा आदि बना दिया गया, अजान दे दी गयी और मस्जिद का निर्माण हो गया। इसलिए हमारे इतिहासकारों को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रत्येक मध्ययुगीन मस्जिद हकीकत में एक पूर्ववर्ती मन्दिर हैं।

(२) मुहम्मद बिन कासिम ने दाहिर की सेना के साथ सीधी लड़ाई नहीं की। हमेशा सीधी लड़ाई से उसने कन्नी काटी है ताकि देश को कुचल सके, फसल जला सके, असहाय जनता को लूट सके, उन्हें मुसलमान बनाकर अपने गिरोह में मिला सके, उनकी पत्नी और सन्तानों को गुलाम बनाकर बेच सके।"

('भारत में मुस्लिम सुलतान', पृष्ठ ३६)

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

श्री ओक का विश्लेषण है, "अरबों की आक्रमणपद्धति एक साँचे में ढली हुई थी। शहरों पर धावा करना, मनुष्यों को मार देना, स्त्रियों का अपहरण करना, बच्चों को उड़ा लाना, भवन, ग्राम और जहाजों को जला देना, सारी सम्पत्ति छीन लेना, हिन्दू मंदिरों को मस्जिद बना देना और सभी मनुष्यों को मार–पीट, धमका–डरा कर मुसलमान बना लेना या फिर मार देना।" (भारत में मुस्लिम सुलतान, पृष्ठ २४)

मुहम्मद–बिन–कासिम भी इसी पद्धति के अनुसार आगे बढ़ रहा था। उसका सामना रावड़ (रावर) के दुर्ग के सामने दाहिर और उसकी मुख्य सेना के साथ हुआ। दाहिर दो दिनों तक बहादुरी के साथ लड़ता रहा किन्तु एक छोटी से दुर्भाग्यपूर्ण घटना के कारण लड़ाई का नक्शा ही पलट गया। मुस्लिम सेना परास्त हो ही चुकी थी और दाहिर की विजय होने ही वाली थी कि उसका हाथी घायल होकर युद्धस्थल से भाग निकला। राजा के दिखाई न पड़ने पर उसकी सेना में आतंक छा गया और भगदड़ मच गयी। राजा घायल होते हुए भी थोड़ी देर बाद युद्धस्थल को लौटा किन्तु स्थिति संभल न सकी। दाहिर जी तोड़ कर लड़ा और वीरतपूर्वक लड़ता हुआ युद्धक्षेत्र में शहीद हो गया।

विधवा रानी मैना बाई ने बची हुई सेना को एकत्र किया और अपूर्व वीरता के साथ उस समय तक दुर्ग की रक्षा करती रही, जब तक पूरी रसद समाप्त न हो गयी। मौत या अपमानभरा नरकतुल्य जीवन ? नगर के सभी स्त्री–पुरुषों को इन दोनों में से किसी एक को चुनना था और उन्होंने मौत को चुना। रानी सहित सभी स्त्रियाँ विशाल चिता प्रज्वलित कर अपने छोटे–छोटे बच्चों सहित उसमें कूद गयीं। पुरुषों ने दुर्ग का फाटक खोल दिया और हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं के बीच कूद पड़े तथा लड़ते–लड़ते प्राणों का उत्सर्ग किया। राजा दाहिर के बेटे जयसिंह ने ब्रह्मनाबाद और राजधानी के नगर अलोर की मजबूत किलाबंदी की और स्वयं सेना लेकर शत्रु को परेशान करने और उसकी रसद के रास्ते काट देने के लिए आगे बढ़ा। मुहम्मद–बिन–कासिम ने ब्रह्मनाबाद को घेर लिया। घिरे हुए लोग प्रतिदिन बाहर निकलते और युद्ध करते। सुबह से शाम तक भयंकर लड़ाई चलती। यद्यपि घिरे लोगों ने छह मास तक वीरतापूर्वक युद्ध किया, किन्तु कुछ प्रमुख नागरिकों के विश्वासघात के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

फलस्वरूप दुर्ग मुसलमान सेनापति के हाथ लग गया। इसके बाद उसने अलोर पर घेरा डाला। दाहिर के दूसरे बेटे फोफी ने कुछ दिनों तक राजधानी की रक्षा की। अलोर के पतन और कुछ अन्य किलों की विजय के बाद मुहम्मद मुलतान की ओर बढ़ा। वहाँ की जनता ने बहादुरी के साथ दो मास तक उसका प्रतिरोध किया। किन्तु एक विश्वासघाती ने मुहम्मद को नगर में पानी आने का साधन बता दिया और मुहम्मद ने इसे काट दिया। फलतः मुलतान नगर आत्मसमर्पण के लिए विवश हो गया।

चचनामा के अनुसार, मुहम्मद–बिन–कासिम मुलतान से कश्मीर की सीमा की ओर भी (७१२ ई. की मुलतान विजय के बाद) बढ़ा था, जहाँ सिन्ध और कश्मीर की सीमाएँ निर्धारित करने के लिए राजा दाहिर के पिता चच ने देवदार तथा चिनार के वृक्ष लगाये थे। वह कश्मीर की पहाड़ियों की तलहटी तक आया, जहाँ ज़्हेलम नदी पहाड़ों से उतर कर मैदान में बहने लगती है किन्तु सिन्ध प्राप्त में उसे पग–पग पर जिस प्रकार के घोर संघर्ष का सामना करना पड़ा था, उसके दृष्टिगत वह कश्मीर की ओर प्रवेश करने का साहस न कर सका। उल्लेखनीय है कि उस समय कश्मीर में ललितादित्य मुक्तापीड़ के बड़े भाई चंद्रापीड वज्रादित्य का शासनकाल चल रहा था। आर० सी० मजूमदार के अनुसार, चन्द्रापीड़ अरब आक्रमण के विरुद्ध अपने राज्य की हिफाजत करने में सफल हुआ था, (भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति, श्रेण्य युग, पृष्ठ १५१) यद्यपि ऐसे किसी युद्ध का विवरण उक्त लेखक ने नहीं दिया है। मुहम्मद–बिन–कासिम ने अपनी फौज की एक टुकड़ी कन्नौज भी भेजी थी। उस समय कन्नौज का शासक राय हरचन्द्र था। किन्तु इससे पूर्व कि वहाँ संघर्ष की नौबत आती मुहम्मद–बिन–कासिम को खलीफा की ओर से फौरी बुलावा आया। यह बुलावा उसके लिए मौत का ही बुलावा था, जिसका कारण बनी थीं सिन्ध की दो कन्याएँ, जिन्होंने अपना परिचय सूर्य देवी और परिमल देवी के रूप में दिया था।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ६. कैसे लिया बदला क्रुद्ध कन्याओं ने

ब्रह्मनाबाद की लूट की उथल–पुथल में एक स्त्री को आसानी से धन प्राप्त करने का अवसर मिला। मुहम्मद–बिन–कासिम के आदमी दाहिर–पुत्रियों की खोज बड़ी सरगर्मी से कर रहे थे। उन पर पुरस्कार भी था। 'राजा दाहिर की पुत्रियाँ सूर्य देवी और परिमल देवी' कह कर उस स्त्री ने दो युवतियों को मुहम्मद–बिन–कासिम के आदमियों के हाथों में सौंप दिया। यह चारा मुहम्मद–बिन–कासिम के मनोनुकूल भी था। खलीफा को यह कहने का साहस उसे नहीं था कि वह दाहिर परिवार को पकड़ने में सफल नहीं हो सका है। (राजा दाहिर की दूसरी पत्नी 'लादी' भी पकड़ी नहीं जा सकी थी, न ही उसकी दोनों पुत्रियाँ। जैसा कि आगे वर्णन आता है, सूर्य देवी नामक उस लड़की का वास्तविक नाम जानकी था।)... ये हिन्दू लड़कियाँ, चाहे वे किसी भी परिवार की हों, प्रातः स्मरणीय हैं। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में, अपने राजा के वधिक का सिर कुचलने में उन्होंने बड़ी वीरता और अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया था। (पुरुषोत्तम नागेश ओक, भारत में मुस्लिम सुलतान, पृष्ठ–५१)

लूट के सामान और गुलामों के समूह के साथ वे वीर किशोरियाँ दाहिर की पुत्रियों के भ्रम में दमिश्क पहुँचा दी गयीं। अपने राजा की हत्या के दुःख और लम्बे सफर की थकान से अत्यन्त मुरझाई इन कन्याओं की वहाँ सेवा–शुश्रुषा की गयी, क्योंकि उन्हें खलीफा वालिद की भेंट किया जाना था। उन्हें उसके सामने पेश करने योग्य बनाया गया। उसने उन्हें अपने हरम में भिजवा दिया। दो महीने के बाद उन्हें पुनः खलीफा के सामने लाया गया। सर एच.एम. इलियट अपने ग्रन्थ 'दि हिस्ट्री आफ इण्डिया, एज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्ज' के भाग १ में पृष्ठ २०१ पर लिखते हैं कि खलीफा वालिद ने दुभाषिए से इन

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

दोनों में से बड़ी और छोटी का पता लगाने को कहा ताकि बड़ी का भोग पहले और छोटी का बाद में हो सके। बड़ी को अपने पास रख कर खलीफा ने छोटी को वापस हरम में भेज दिया। इतिहासकार के अनुसार, "खलीफा उसकी सुन्दरता से मुग्ध हो गया था। उसने उसके कमनीय शरीर पर अपना हाथ रख उसे अपनी ओर खींचा।"

वीर बाला की आँखों में खून उतर आया। रोष और प्रतिशोध की आग धधक उठी। उसकी इज्जत खतरे में थी। वह उस शैतान के खेमे में थी, जहाँ युवतियों के कौमार्य से खेला जाता था। उसका नाम जानकी था। मगर उसे दाहिर पुत्री सूर्य देवी की भूमिका निभानी थी। राजा दाहिर की असली पुत्रियाँ तो अपनी वीर माता 'लादी' के साथ जौहर में अमर हो चुकी थीं। जानकी को गिन–गिन कर बदला लेना था अपने देश के विध्वंस का, अपने राजा व उसके सैनिकों के मारे जाने का, सती–साध्वियों के सतीत्व हरण का, अपने धार्मिक स्थानों के अपवित्र और नष्ट भ्रष्ट होने का। बिजली की तेजी के साथ जानकी पीछे हट गयी। एक कड़कती आवाज में उसने खलीफा से पूछा, "यह कैसा घृणित नियम आप लोगों में है, जिसके आधार पर आपके पास भेजने से पहले मुहम्मद–बिन–कासिम ने मुझे तीन रात अपने पास रखा। सम्भवतः अपने नौकरों की जूठन खाने का ही रिवाज आप लोगों में है। क्या इसी में ही आप लोग आनन्दित होते हैं ?"

जानकी के ये शब्द खलीफा वालिद के लिए तीखे बाणों के समान थे। धैर्य की बागडोर उसके हाथ से जाती रही। क्रोधावेश में उसी क्षण उसने स्याही और लेखनी मँगा कर अपने हाथ से एक आज्ञा–पत्र लिखा, "मुहम्मद–बिन–कासिम जहाँ कहीं जिस भी अवस्था में हो, उसे ताजे काटे हुए साँड की खाल के अन्दर सी कर शीघ्रातिशीघ्र दमिश्क भेजा जाए।"

उस समय मुहम्मद–बिन–कासिम बीकानेर के उत्तर में उधवपुर (उदयपुर) में था। तेजी के साथ एक लम्बा सफर तय करते मृत्यु–दूत वहाँ जा पहुँचे। खलीफा की निजी टुकड़ी विशिष्ट संदेश–वाहक के साथ आदेश का पालन करवाने हेतु थी ही। खलीफा का आज्ञापत्र पढ़कर मुहम्मद–बिन–कासिम आश्चर्यचकित रह गया। इससे पूर्व कि वह कुछ भी कह पाता उसे ऊँचे आसन

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

से नीचे घसीट कर हाथ पैर बाँध कर साँड़ के कच्चे चमड़े में सी दिया गया। फिर वह खूनी गठरी एक पेटी में बन्द करके दमिश्क लायी गयी। खलीफा ने अपने दरबारियों के साथ उन दो वीर बालाओं को भी बुलवा लिया, जिनके वक्तव्य पर उत्तेजित होकर उसने मुहम्मद–बिन–कासिम की यह दुर्दशा की थी।

खलीफा के आदेश पर पेटी खोली गयी। उसमें पड़ी मुहम्मद की लाश की तरफ इशारा करते हुए उसने बड़े घमण्ड से लड़कियों को कहा, "देखो! किस प्रकार मेरे आदमियों ने मेरी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया है।" चमड़े में बन्द मुहम्मद–बिन–कासिम घुट–घुट कर दो दिन में इस लोक से चल बसा था।

यह क्षण उन दोनों हिन्दू कन्याओं के लिए महज विजय का अवसर था। एक महा विध्वंसक उनके चरणों में काल–कवलित ठंडा पड़ा था। तब जानकी उर्फ सूर्य देवी ने कहा, "निःसन्देह आपकी आज्ञा की पूर्ति हुई है। किन्तु आपका दिमाग न्याय और विवेक से एकदम खाली है। साधारण समझ भी आपमें नहीं है। एक शासक को चाहिए कि जो कुछ वह किसी मित्र या शत्रु से सुनता है, उसे तर्क की कसौटी पर कसे और जब वह सत्य सिद्ध हो, तब न्याय–संगत आदेश दे। मुहम्मद–बिन–कासिम ने तो हमारा स्पर्श तक भी नहीं किया था। मगर उसने हमारे राजा की हत्या की, हमारे देश को तहस–नहस कर दिया। हमारे देश के सम्मान को नष्ट कर हमें गुलामी की दल–दल में धकेल दिया। इसीलिए प्रतिशोध और बदला लेने के लिए हमने उस पर झूठे आरोप का सहारा लिया। उसने हमारे जैसी हजारों स्त्रियों को बन्दी बनाकर अपवित्र किया था, हमारे ७० शासकों को मौत के घाट उतार डाला था। मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें, मीनार और अजान–मंच बना डाले थे।"

यह सुनकर खलीफा वालिद अति खिन्न हुआ। इतिहासकार कहते हैं कि शोक के तीव्र आवेग में उसने अपनी हथेली काट खायी। दो विवेकशील हिन्दू कन्याओं के सम्मुख वह हतप्रभ खड़ा था। वह अत्यन्त मूर्ख सिद्ध हुआ था। उसने अपना सेनापति खो दिया था। वह शर्मसार था।

अपनी इस मूर्खता और भारी शोक का उसे इतना आघात पहुँचा कि जनवरी, ७१५ ई. में वह इस संसार से चल बसा। हज्जाज अपने दामाद की

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

दर्दनाक मौत के सदमे से खलीफा से भी ६ महीने पहले जून, ७१५ ई. में ही यमलोक को प्रस्थान कर गया था।

मुहम्मद–बिन–कासिम, हज्जाज और खलीफा की तिहरी मृत्यु पर परवर्ती खलीफा सुलेमान हतोत्साहित हो चुका था। खौफनाक हालात में जकड़ी दो हिन्दू वीर बालाओं की अनोखी प्रतिभा, मानसिक संतुलन और अदम्य साहस को देखकर वह घबरा उठा। उसने इन वीर किशोरियों से अपना कोई सम्बन्ध न रखने का निर्णय किया। उसने इन वीरांगनाओं को घोड़ों की पूँछ से बाँध दमिश्क की सड़कों पर घसीट कर मार डालने की आज्ञा दी। इससे इन बालाओं का कोमल तन चिथड़े–चिथड़े हो गया। किन्तु मरते हुए भी उन्हें इस बात का सन्तोष था कि कन्याएँ होकर भी और आसुरी पंजों में आबद्ध होने के बावजूद, सर्वथा प्रतिकूल परिस्थितियों में उलझी होने पर भी वे अपने देश और धर्म के क्रूर शत्रु से मनचाहा बदला ले सकी थीं।

तत्कालीन अरब इतिहास भ्रमात्मक है। न तो उसके विवरण ही स्पष्ट हैं, न उन्होंने इस घटना की कोई तिथि ही दी है। यह भी निश्चित नहीं है कि वे वीर बालाएँ दमिश्क की सड़कों पर घसीटकर मार डाली गयीं या दीवार में चिनवा दी गयीं। कुछ इतिहासकारों के अनुसार, खलीफा वालिद ने क्रोधावेश में उन्हें दीवार में चिनवा दिया था। अन्य इतिहासकारों के अनुसार, खलीफा वालिद ने नहीं, बल्कि खलीफा सुलेमान ने कासिम को पकड़वा कर मँगवाया और मरवाया था और बाद में इन वीर बालाओं को घोड़ों की पूँछ के साथ बँधवाकर दमिश्क की सड़कों पर घिसटवाकर मारा था। श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक के अनुसार, इन विरोधात्मक विवरणों को पढ़कर यही लगता है कि खलीफा वालिद ने ही अपने अपमान का उत्तरदायी हज्जाज और मुहम्मद–बिन–कासिम को माना था और मुहम्मद–बिन–कासिम को साँड़ की खाल में सिलवा कर मँगवाया था मगर बाद में सच्चाई के ज्ञान ने उसकी जान ले ली। तत्पश्चात् परवर्ती खलीफा ने भयभीत हो इन वीर बालाओं को घोड़ों की पूँछ के साथ घिसटवाकर मरवा दिया। इस बीभत्स, भयंकर और दुःखान्त विवरण में दाहिर का परिवार हिन्दुत्व और हिन्दुस्थान के देशभक्त वीरों के रूप में आकाश गंगा की भाँति चमकता है। अलौकिक विवेक का जो चमत्कारी प्रदर्शन इन वीर

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

बालाओं ने किया है, वह संसार के इतिहास में बेजोड़ है। कृतज्ञ देश अपने इन वीरों और वीर बालाओं को अवश्य स्मरण रखेगा।

"मुहम्मद–बिन–कासिम की तीन वर्षों की विनाश–लीला में सारा सिन्ध बरबाद हो गया। अलोर, देवालयपुर (कराची), ब्रह्मनाबाद, बुधिया, नीरून, शीरशम, शिव–स्थान, निल्हम, शैलज़, बहितलुर, कंधबेल, बैत, सागर, रावेर, जयपुर, नारायणी, काजीजात, बहरूर, दहलीला, चानीर, बतिया, जालावती, मुलतान, महल सवंधी, दन्दा करबाहा, बहरावर, लोहाना, सिहटा, ब्रह्मपुर, अजताहद, करूर, रोरी और उधवपुर आदि फलते–फूलते नगरों को जलाकर धुआँ देने वाले खण्डहर बना दिया गया। हरे–भरे खेतों, रमणीय झीलों से परिपूर्ण जगमगाते प्रान्त को मुहम्मद–बिन–कासिम की ऐतिहासिक गुण्डागर्दी ने रेगिस्तान बना दिया। आबादी के एक बड़े भाग को उसके देश और भाइयों से छीनकर मुसलमान बना दिया गया। नगर और दुर्ग राख हो गये। मन्दिर मस्जिदों में बदल गये।

"भारत की दो वीर बालाओं ने इस नाटक के खलनायकों को पवित्र भारत भूमि और इसके धार्मिक निवासियों पर शैतानी चक्र चलाने के अनुरूप उचित दण्ड दिया। हमारे इस कृतज्ञ राष्ट्र को इन वीर बालाओं की याद सर्वदा रखनी चाहिए।" (भारत में मुस्लिम सुलतान, पुष्ठ ५४–५५)



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १०. डूबा दहाने में गंगा के आकर

सिन्ध पर लगातार तीन साल तक अत्याचार करने वाले मुहम्मद–बिन–कासिम की दर्दनाक मृत्यु का समाचार मिलने पर सिन्ध के सरदारों ने अरबों का जुआ उतार फेंकने का यत्न किया। राजा दाहिर के बेटे जयसिंह ने ब्रह्मनाबाद पर फिर कब्जा कर लिया। खलीफा सुलेमान (७१५–७१७ ई.) ने सिन्ध पर नियन्त्रण हेतु अब हबीब को भेजा। हबीब ने अलोर पर कब्जा कर लिया तथा कुछ और छोटे–छोटे नगरों को जीत लिया। अगले खलीफा उमर द्वितीय (७१७–७२० ई.) ने सिन्ध के सामन्तों को अपनी अधीनता में एक प्रकार से पूरी आजादी देने का प्रस्ताव किया। शर्त यह रखी कि वे इस्लाम कबूल कर लें। जयसिंह समेत अनेक सामन्तों ने यह शर्त मान ली। लेकिन हशाम की खिलाफत (७२४–७४३ ई.) के दिनों में जय सिंह ने इस्लाम का परित्याग करके सिन्ध के तत्कालीन राज्यपाल जुनैद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। इस पर जुनैद ने उसे हराकर कैद कर लिया।

जुनैद ने अब मुहम्मद बिन–कासिम का अधूरा पड़ा काम पूरा करने का निश्चय किया। उसने जैसलमेर और जोधपुर के कुछ भाग, भड़ौच, मालवा, उज्जैन आदि को विजय किया। लेकिन अरबों की यह विजय स्थायी नहीं थी, क्योंकि प्रतिहार, राष्ट्रकूट और कश्मीर आदि के शासकों ने उनका डटकर मुकाबला किया व सिन्ध और मुलतान से आगे न बढ़ने दिया। इतिहासकार लेनपूल ने अरबों की सिन्ध विजय को एक साधारण घटना तथा परिणामहीन विजय माना है। अन्य इतिहासकार वुल्जले हेग (Wolseley Haig) ने लिखा है है कि "इस्लाम की लहर सिन्ध और दक्षिणी पंजाब के ऊपर से बह कर फिर पीछे हट गयी और रेत पर कुछ चिह्न छोड़ गयी।"

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

श्री आर.सी. मजूमदार अपने ग्रन्थ 'भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति, श्रेण्य युग, (पृष्ठ १६६–२००)' में लिखते हैं, "सिन्ध की विज़य को इस बात का सूचक नहीं समझना चाहिए कि सामान्यतः अरबों का रण–कौशल भारतीयों से अधिक उच्च कोटि का था। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि सिन्ध की विजय भारत में अरबों की पहली और अन्तिम महान् सफलता थी। इसमें सन्देह नहीं कि सिन्ध के पड़ोस की छोटी–छोटी रियासतों को हराने में जुनैद को तात्कालिक सफलता मिली थीं लेकिन जब उसे उत्तर में कश्मीर और पूरब में कन्नौज या दक्षिण में प्रतिहारों और चालुक्यों के शक्तिशाली राज्यों से लोहा लेना पड़ा, तो उसकी विजयों का जादू टूट गया। यहाँ तक कि कुछ समय के अन्दर ही सिन्ध का भी अधिकांश भाग अरबों के हाथ से निकल गया। जुनैद के बाद तम्मिन सिंध का राज्यपाल बना। उसके उत्तराधिकारी हाकिम–अल–कलबी के दौर में तो पूर्वकाल में मुसलमान बने हुए अधिकांश हिन्दू पुनः अपने धर्म में वापस आ मिले। मुस्लिम शासन की स्थिति इतनी दयनीय तथा असुरक्षित हो गयी थी कि हाकिम को एक झील की पूर्वी सीमाओं पर अलग से एक शहर (ब्रह्मनाबाद के उत्तर–पूर्व में कुछ मील के फासले पर) बसाना पड़ा, जिसका नाम 'महफूज' (सुरक्षित) रखा गया, ताकि मुसलमान वहाँ पर सुरक्षित रह सकें। उसने इसे ही अपनी राजधानी बनाया। अरब इतिवृत्तों के अनुसार, "ऐसी जगह तलाश करना, जहाँ कोई मुसलमान भाग कर पनाह ले सके, मुश्किल हो गया था", इसलिए सिन्ध के राज्यपाल हाकिम ने उक्त शहर आबाद किया था ताकि यह उसकी पनाहगाह बन सके। (Elliat & Dawson, Historians of Sind, Vol. III, P- 40-41; Wolseley Haig, The Cambridge History of India, Vol. III, page 8-9; & आर.सी. मजूमदार, 'श्रेण्य युग', पृष्ठ– १६७) हम देखते हैं कि अन्ततः तीन शताब्दियों की अनवरत कोशिशों के बाद भारत में अरबों का प्रभुत्व सिर्फ मन्सूर और मुलतान की दो छोटी–छोटी रियासतों तक सीमित रह गया था।

"जब हम दुनिया के अन्य भागों में अरबों की शानदार सैन्य सफलताओं का स्मरण करते हैं, तो अरबों की भारत में अपेक्षया इतनी नगण्य सफलता एक उल्लेखनीय वैषम्य की तसवीर पेश करती है। इसका कारण निश्चय ही भारत

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

की धार्मिक और सामाजिक विशिष्टताओं में निहित नहीं है, जैसा कि एल्फिन्स्टन जैसे पुराने इतिहासकारों ने सिद्ध करने की व्यर्थ चेष्टा की थी। इसका कारण निःसंदेह यह है कि उस जमाने के अन्य देशों की तुलना में भारतीयों की सैन्य शक्ति और राज–व्यवस्था अधिक ऊँचे स्तर की थी। बाद की घटनाओं की रोशनी में यह बात चाहे कितनी अविश्वसनीय लगे, लेकिन इतिहास का यही स्पष्ट निर्णय है।"

एक कवि ने ठीक ही कहा है :–

**वो दीने–हज्जाजी का बेबाक बेड़ा, न जीहूँ (जेहलम नदी) में अटका, न सीहूँ (सिन्धु नदी) में ठठका।**

**किये पार जिसने सातों समुन्दर, वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।।**

कवि द्वारा यहाँ 'गंगा के दहाने' को भारत–भूमि के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया गया है। यद्यपि भारत उस समय अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था और अनेक राज्य एक–दूसरे के विरुद्ध संघर्षरत रहते थे एवं अरब आक्रमण के विरुद्ध वे संगठित होकर नहीं लड़े तथापि अरबों से अलग–अलग तौर पर लड़ते हुए भी उन्होंने अरबों को स्थान–स्थान पर परास्त किया और इन "विश्व–विजेताओं" को सिन्ध और मुलतान से आगे नहीं बढ़ने दिया। अरबों के लिए प्रचण्ड अवरोध खड़े करने वाले तत्कालीन हिन्दू शासकों में हम मुख्यतः नौ राजाओं की गणना निःसंदेह नवरत्नों के रूप में कर सकते हैं –

(१), (२) काबुल और जाबुल के राजा (सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से दसवीं शताब्दी तक)

(३) नांदीपुरी के गुर्जर राजा जयभट्ट चतुर्थ (७२५–७३५ ई.)

(४) प्रतिहार वंश के अवन्ति (उज्जैन) नरेश नागभट्ट (७३०–७५६ ई.)

(५) राष्ट्रकूट वंश के बरार के राजा दन्तिदुर्ग (७३५–७५५ ई.)

(६) चालुक्य वंश के लाट (दक्षिण गुजरात) नरेश अवनिजनाश्रय पुलकेशिन (अरबों को पराजित किया, ७३६ ई.)

(७) गुहदत्त / गुहिलोत वंश के चित्तौड़ के राजा बप्पा रावल (७३४–७५३)

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

(८) कन्नौज नरेश यशोवर्मन (७००–७४० ई.)

(६) कर्कोट वंश के कश्मीर सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ (७२४–७६१ ई.)

उपरोक्त वीर शिरोमणि राजाओं में से कश्मीर सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ तो हमारे वृत्तान्त के नायक हैं ही, उनके अतिरिक्त शेष आठ राजाओं के बारे में संक्षिप्त जानकारी लगे हाथ यहाँ प्रस्तुत करना भी कम महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता।

## (क) काबुल व जाबुल (वर्तमान गजनी) के हिन्दू राजा

सिन्ध के अलावा दो और सीमावर्ती राज्य (अफगानिस्तान में) थे। एक का नाम काब्रुल या काबुलिस्तान था और दूसरे का नाम जाबुल या जाबुलिस्तान (वर्तमान गजनी) था। अरबों ने उन दोनों हिन्दू राज्यों को अपने अधीन करने के लिए लगभग दो सौ वर्ष तक यत्न किया परन्तु उन्हें विशेष सफलता न मिली। इन दोनों हिन्दू राज्यों ने अरबों का बड़ा सख्त मुकाबला किया।

सन् ६५० ई. में बसरा (इराक) के राज्यपाल ने एक फौज सिजिस्तान (सीस्तान) को भेजी। इस क्षेत्र में अरबों को शुरू में कुछ सफलता मिली और वे हेलमंद नदी के किनारे बस्त तक बढ़ते चले आये। लेकिन जल्दी ही उन्हें वापस लौटना पड़ा और उन्होंने जो कुछ जीता था, उसे खो दिया।

खलीफा मुआविया (६६१–६७६ ई.) के जमाने में इस क्षेत्र को जीतने की पुनः जी–जान से कोशिश की गयी। सिजिस्तान के राज्यपाल अब्द–अर–रहमान के नेतृत्व में एक फौज काबुल की ओर बढ़ी और कुछ महीनों तक घेरा डालने के बाद उसने काबुल पर कब्जा कर लिया। अरब अब काबुल से जाबुल की ओर बढ़े और विरोधियों को हराकर उस पर कब्जा कर लिया। इसके फौरन बाद ही अब्द–अर–रहमान को वापस बुला लिया गया। काबुल और जाबुल के हिन्दू राजाओं ने मौका पाते ही अरबों का जुआ उतार फेंका और अरबों को इन दोनों देशों से खदेड़ भगाया। नये अरब राज्यपाल ने यह अभियान फिर से शुरू किया, लेकिन बाद में इन दोनों राजाओं के साथ, उनसे धन वसूल करके सन्धि कर ली।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सन् ६८३ ई. में काबुल ने विद्रोह कर दिया। सिजिस्तान का अरब राज्यपाल फौज लेकर आया। जुन्जा नामक स्थान पर भयंकर युद्ध हुआ। अरबों की फौज को पूरी तरह पछाड़ दिया गया। स्वयं अरब राज्यपाल और अमीर वर्ग के सदस्यों की लाशें ही लाशें युद्ध भूमि में बिछ गयीं और सैनिक भाग खड़े हुए। जाबुल के राजा ने भी अरबों के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी, लेकिन कुछ प्रारम्भिक सफलताओं के बावजूद वह मारा गया (सन् ६८५ ई.)। लेकिन उसके बेटे और उत्तराधिकारी ने लड़ाई जारी रखी। उसने तब तक अरबों का मुकाबला नहीं किया था, जब तक वे उसके इलाके में काफी अन्दर तक नहीं घुस आये। फिर उसने सारे पहाड़ी दर्रे और मार्ग बन्द कर दिये और अरब सेनापति को सन्धि करने के लिए विवश कर दिया, जिसके अनुसार अरब सेनापति ने यह वादा किया कि भविष्य में वह जाबुल पर हमला नहीं करेगा। लेकिन खलीफा ने यह सन्धि नामंजूर कर दी और सेनापति को बर्खास्त कर दिया।

इसके फौरन बाद ही हज्जाज इराक का राज्यपाल बना (सन् ६९५ ई.)। उसके सेनापति उबेदुल्ला ने काबुल को दबाने की कोशिश की। काबुल और जाबुल के दोनों हिन्दू राजाओं ने मिलकर अरब सेना को कड़ी शिकस्त दी। अरबों की पीछे हटती हुई फौज के रास्ते बन्द कर दिये गये और यद्यपि वे लड़ते हुए इस घेराबन्दी से बाहर निकल गये, पर उनमें से अनेक भूख और प्यास से तड़प–तड़प कर मर गये। अपनी फौज की यह दुर्दशा देखकर शोक से उबेदुल्ला की मृत्यु हो गयी।

अरब फौजों को घोर विपत्ति का सामना करना पड़ा था। कुछ लेखकों का कहना है कि रक्षा–शुल्क के रूप में एक बड़ी रकम अदा करने के बाद ही अरब सेना को घेरे से बाहर निकलने का मौका दिया गया था। इस अपमान का बदला लेने के लिए अरबों ने पुनः एक विशाल सेना भर्ती की। बसरा और कुफा (ईरान की राजधानी) के लोगों पर भारी युद्ध–कर लगाकर सेना को लैस किया गया। उसके कमांडर अब्द–अर–रहमान ने सन् ६९९ ई. में जाबुल पर चढ़ाई की। बाद में हज्जाज ने जाबुल के साथ सन्धि कर ली और वह इस शर्त पर सात या नौ साल तक जाबुल पर हमला न करने को राजी हो गया कि राजा उसको हर साल खिराज के रूप में एक निश्चित रकम अदा करता रहेगा। यह

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सन्धि ७१४ ई. में हज्जाज की मृत्यु तक ही चली। इसके बाद जाबुल के राजा ने खिराज देने से इन्कार कर दिया और तत्पश्चात् लगभग ४० वर्षों तक अरब उससे कुछ भी वसूल नहीं कर पाये।

इस प्रकार अरब पचास से अधिक वर्षों तक काबुल और जाबुल को अपने आधिपत्य में लेने की लगातार कोशिश करते रहे थे, जिसके दौरान उन्होंने कुछ महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की थीं, पर इसके एवज में उन्हें भारी क्षति भी उठानी पड़ी थी। वे कोई स्थायी सफलता नहीं पा सके और आखिर में उन्हें यकीन हो गया कि इन देशों को जीतना उनके बस की बात नहीं है। तब अरबों ने इन दोनों देशों में हस्तक्षेप करना बन्द कर दिया। वे किसी न किसी रूप में अरबों का प्रभुत्व स्वीकार कर लें, इस इतना ही उन्होंने पर्याप्त माना। लेकिन यह भी बड़ी कठिनाई से और सिर्फ थोड़े से समय के लिए (सन् ७०० से ७१४ ई. तक) ही हो सका। इसके बाद अगले डेढ़ सौ वर्षों तक काबुल और जाबुल ने निर्विघ्न रूप से अपनी स्वतन्त्र सत्ता बरकरार रखी।

सर्वविदित है कि पश्चिम की दिशा में भारत में प्रवेश करने के लिए शत्रु सेनाओं के सामने सिर्फ चार मार्ग खुले थे। एक समुद्री मार्ग था और अन्य तीन मार्ग मकरान तट, दर्रा खैबर और दर्रा बोलान से गुजरते थे। शुरू से ही अरब इन चारों मार्गों से भारत के अन्दर घुसने की कोशिश करते रहे। थाना, भड़ौच और देबल के विरुद्ध सर्वप्रथम समुद्री आक्रमण और फिर इसी दिशा में होने वाले बाद के आक्रमणों में समुद्री मार्ग से भारत में घुसकर कदम जमाने के उनके प्रयत्नों की व्यर्थता ही सिद्ध हुई। मकरान तट वाले मार्ग का प्रयोग कर वे सिन्ध पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करने में अवश्य सफल हुए, किन्तु स्थल मार्गों में दर्रा खैबर की हिफाजत काबुल और जाबुल कर रहे थे और दर्रा बोलान की हिफाजत किकान या किकानान के बहादुर जाट कर रहे थे। इन राज्यों के साथ अरबों के लम्बे युद्ध, भारत में इन दोनों बड़े दर्रों के रास्ते से घुसने के उनके अनवरत किन्तु निष्फल प्रयासों के सूचक हैं। इन इलाकों के कर्मठ पहाड़ी लोगों ने, जिन्हें अपनी दुर्गम पहाड़ियों का कुदरती लाभ प्राप्त था, "विश्व के इन विजेताओं" का डटकर मुकाबला किया और हालाँकि कई बार वे युद्ध में हारे भी, लेकिन उन्होंने मन से हार नहीं मानी।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

श्री आर.सी. मजुमदार के अनुसार, "अगर कभी भारत का बिना पक्षपात और बिना पूर्वाग्रह के इतिहास लिखा गया होता, तो इन बहादुर लोगों के वीरतापूर्ण कारनामों को, जिन्होंने दो शताब्दियों तक अरब हमलावरों को भारत में घुसने से रोका, वह मान्यता जरूर दी गयी होती, जिसके वे पात्र हैं।"

## (ख) नान्दीपुरी के गुर्जर राजा जयभट्ट चतुर्थ व प्रतिहार वंशीय अवन्ति नरेश नागभट्ट

लाट (दक्षिणी गुजरात) की एक समय राजधानी रही नान्दीपुरी के गुर्जर परिवार का अन्तिम ज्ञात राजा था जय भट्ट चतुर्थ (७२५–७३५ ई.)। उसके अभिलेख से पता चलता है कि उसने अरबों के आक्रमण के समय उन्हें मुँहतोड़ जवाब देकर जहाँ अपने राज्य की रक्षा की, वहाँ वलभी (काठियावाड़ की राजधानी) के राजा की भी मदद करते हुए ताजिकों (अरबों), जिन्होंने वहाँ असंख्य लोगों पर मुसीबत के पहाड़ ढाये थे, से युद्ध कर उसके राज्य को भी बचाया था।

अरबों ने जोधपुर के गुर्जर राजा को हरा दिया था, लेकिन अवन्ति के प्रतिहार वंशीय राजा नागभट्ट प्रथम (७३० ई.–७५६ ई.) ने अरबों के आक्रमण का आघात झेलकर भी उन्हें पीछे धकेल दिया। अरब आक्रमणकारियों से पश्चिमी भारत की रक्षा करने का पूरा श्रेय राजा नागभट्ट को है। अवन्ति के प्रतिहारों की यह विजय उस दुःखद पृष्ठभूमि में हुई थी, जिसमें अन्य राज्यों को, विशेषतः जोधपुर के उस गुर्जर राजपरिवार को भयंकर पराजय का सामना करना पड़ा था, जो उस समय तक सारे गुर्जर राज्यों का प्रमुख चला आ रहा था। निस्संदेह इस विजय से राजा नागभट्ट की प्रतिष्ठा बढ़ी। छोटी–छोटी तत्कालीन गुर्जर रियासतों ने उसके प्रभुत्व को सहर्ष स्वीकार किया।

ग्वालियर अभिलेखों में कहा गया है कि राजा नागभट्ट ने मलेच्छों की शक्तिशाली सेना को कुचल कर रख दिया। उसने पश्चिमी भारत की अरबों से रक्षा की और अनेक उन राज्यों को अपने अधीन कर लिया, जिन्हें अरब जीत चुके थे। राजा नागभट्ट के पूर्वज जोधपुर या मंदौर (जोधपुर से पाँच मील दूर) की मुख्य प्रतिहार शाखा की नाम मात्र अधीनता स्वीकार करते थे। परन्तु राजा

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

नागभट्ट ने अपनी पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा कर दी थी। इतिहास इस बारे अधिक प्रकाश नहीं डालता कि राजा नागभट्ट ने सिन्ध के किस अरब शासक को हराया, जुनैद को या उसके उत्तराधिकारी तम्मिन को।

आर.सी. मजुमदार के अनुसार, जुनैद ने खुद जाकर बल्ल–मंडल और जुर्ज जीत लिये और उसके कमांडर, मरु–मार (जैसलमेर और जोधपुर का क्षेत्र), भड़ौच और मालवा आदि को रौंदते हुए उज्जयिनी तक बढ़ते चले गये। अरबों के यह आक्रमण ७२४ ई. से ७३८ ई. के बीच हुए थे। लेकिन उनकी यह सफलता अल्पकालिक ही साबित हुई और उन्हें प्रतिहार राजा नागभट्ट व अन्यों ने हरा दिया। जैसा कि ऊपर बताया गया है, नांदीपुर के गुर्जर राजा जय भट्ट चतुर्थ का भी दावा है कि उसने अरबों को हराया था। इन दावों की समकालीन अभिलेखों में पुष्टि मिलती है। इसके अतिरिक्त अनेक दूसरे भारतीय राजाओं के बारे में चारण परम्पराओं में कहा गया है कि उन्होंने भी मलेच्छों को हराया था। अरब इतिवृत्तों में भी यह स्वीकारा गया है कि जुनैद के उत्तराधिकारी तम्मिन के जमाने में अरबों के हाथ से यह सारे इलाके छिन गये थे और उन्हें सिन्ध तक ही सीमित हो जाना पड़ा था लेकिन यहाँ सिन्ध में भी उनकी स्थिति डाँवाडोल हो गयी थी।

## (ग) राष्ट्रकूट वंशीय, बरार के राजा दन्ति दुर्ग एवं चालुक्य वंश के दक्षिण गुजरात नरेश पुलकेशिन

जिस समय प्रतिहार वंशीय अवन्ति नरेश नागभट्ट अपने वंश की भावी महत्ता की नींव रख रहा था, उसी समय दक्षिण में एक अन्य शक्तिशाली राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग (रट्टा रानी एवं इन्द्र प्रथम का सुपुत्र) अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था। राज्यारोहण के समय उसकी आयु मात्र २० वर्ष की थी। उसने लगभग ७३५ ई. से ७५५ ई. तक राज्य किया। उसने लाट (दक्षिण गुजरात) के अतिरिक्त सिन्ध के अरब शासकों को भी पराजित किया।

राष्ट्रकूट वंश की महानता वास्तव में राजा दन्तिदुर्ग से ही प्रारम्भ होती है। उसके पूर्वज लट्टलूर (भूतपूर्व हैदराबाद रियासत का उसमानाबाद जिला) में रहते थे, परन्तु बाद में वे ६२५ ई. में इल्लिचपुर (बरार) में चले गये थे, जहाँ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

पर उन्होंने अपने लिए एक छोटा सा राज्य स्थापित कर लिया था और एक शताब्दी से अधिक समय तक चालुक्यों के अधीनस्थ राजाओं की हैसियत से राज्य करते रहे थे। दन्तिदुर्ग के पिता इन्द्र प्रथम के काल में राष्ट्रकूटों की शक्ति कुछ बढ़ी थी परन्तु वास्तविक उत्थान दन्तिदुर्ग के काल से आरम्भ हुआ। उसने कांची, कलिंग, कोशल, श्रीशैल, मालव, लाट और टंक इत्यादि प्रदेशों के नरेशों को पराजित किया, उज्जैन क्षेत्र की कई छोटी–छोटी रियासतों के कई राजाओं को उदारतापूर्वक पारितोषिक दिये तथा वहाँ पर एक गुर्जर महल में अपना निवास स्थान बनाया। उसने उज्जैन में हिरण्यगर्भदान यज्ञ किया, जिसमें उसने अपने वर्चस्व को प्रकट करते हुए गुर्जर वंशी राजा तथा अन्य राजाओं को द्वारपाल बनाया।

दन्तिदुर्ग की पहली विजय वह थी जब उसने अपने चालुक्य स्वामीराज विक्रमादित्य द्वितीय तथा उसके सामन्त पुलकेशिन (दक्षिणी गुजरात नरेश) से मिलकर अरबों के आक्रमण को पीछे हटाया। सन् ७३६ या ७३७ ई. में नवसारी नामक स्थान के समीप एक खूनी युद्ध हुआ, जिसमें अरब आक्रमणकारियों की ऐसी बुरी तरह हार हुई कि उन्होंने फिर कभी गुजरात पर आक्रमण करने का दुःसाहस नहीं किया। अरबों को परास्त करने में बरार के नरेश दन्तिदुर्ग तथा गुजरात के राजा पुलकेशिन ने विशेष रूप से वीरता दिखायी। चालुक्य सम्राट् विक्रमादित्य द्वितीय ने अपने दोनों सामन्तों दन्तिदुर्ग तथा पुलकेशिन की भूरि–भूरि प्रशंसा की। उसने पुलकेशिन को 'चालुक्य अलंकार', 'पृथ्वी वल्लभ' (पृथ्वी का स्वामी), 'अवनि जनाश्रय' (विश्व के लोगों का शरणस्थल), 'दक्षिणापथस्तम्भ' तथा 'अजेयों का विजेता' इत्यादि उपाधियों से विभूषित किया। इसी तरह उसने दन्तिदुर्ग को भी 'पृथ्वी वल्लभ' तथा 'खड्‌गावलोक' (जिसकी दृष्टि मात्र ही तलवार के समान प्रभावकारी है) की उपाधियों से अलंकृत किया।

जब विक्रमादित्य द्वितीय की मृत्यु हुई (७४७ ई.) तो दन्तिदुर्ग ने अपनी शक्ति को बढ़ाने की कोशिश की। उसने भड़ोच के निकट नान्दीपुरी (नान्दोह) के गुर्जर राजा को परास्त किया और उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। सन् ७५० ई. तक वह मध्य और दक्षिणी गुजरात तथा सारे मध्यप्रदेश

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

और बरार का स्वामी बन गया था। ७५३ ई. के अन्त तक वह सारे महाराष्ट्र का स्वामी बन गया। इसके बाद उसने 'महाराजाधिराज परमेश्वर' और 'परम भट्टारक' (परम पूज्य) की उपाधियाँ ग्रहण कीं।

## (घ) गुहिलोत वंश के चित्तौड़ नरेश बप्पा रावल

छठी शताब्दी ई. के मध्य, गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद गुहदत्त नाम के सामन्त ने पुराने उदयपुर राज्य के पश्चिमी भाग में एक छोटी सी रियासत कायम कर ली थी। इस रियासत पर लम्बे अरसे तक उसके वंश के राजा, जिन्हें उसके नाम पर गुहिल या गुहिल–पुत्र कहते थे, शासन करते रहे। खुम्माण प्रथम (अथवा खोम्माण) इस वंश का नौवाँ राजा था और बप्पा रावल के नाम से भी प्रसिद्ध था। अरब हमलों से अराजकता और अफरा–तफरी की जो स्थिति बन गयी थी, उसका लाभ उठाकर वह चित्तौड़ और उसके गिर्द के क्षेत्र का स्वामी बन गया था। उसने अपने खानदान की मान–प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति इतनी बढ़ा ली थी कि आगे आने वाली पीढ़ियाँ उसको न सिर्फ अपने खानदान का सबसे महान् शासक मानने लगीं, बल्कि उसका वास्तविक संस्थापक भी समझने लगीं।

टाड के अनुसार, बप्पा रावल ने सन् ७२८ ई. में चित्तौड़ पर कब्जा किया था और सन् ७६४ ई. में गद्दी त्याग दी थी। पंडित गौरी शंकर ओझा ने इन दोनों घटनाओं की तारीखें सन् ७३४ ई. और ७५३ ई. बताई हैं। यह वंश भारत के इतिहास में सूर्य की भाँति चमकता है। इसी वंश में आगे चलकर महाराणा साँगा और महाराणा प्रताप हुए, जिन्होंने क्रमशः बाबर तथा अकबर का मुकाबला किया और देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

बप्पा रावल को हारित–रासि नाम के एक ऋषितुल्य महापुरुष का आशीर्वाद एवं सहायता प्राप्त हुई थी, जिसने पग–पग पर उसका उसी प्रकार मार्गदर्शन किया जैसे चाणक्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त का पथप्रदर्शन किया था। बप्पा की विजय गाथा का वर्णन एक ऐतिहासिक रचना, 'उड़ता त्रिशूल' में श्री सय्याह सुनामी (रामजीदास·पुरी) ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। यहाँ हम उसमें उल्लिखित, बप्पा के अरबों के विरुद्ध युद्ध एवं व्यूह रचना आदि का संक्षिप्त

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

विवरण देना चाहते हैं, जो आशा है, पाठकों के लिए जानकारीपूर्ण एवं रुचिकर सिद्ध होगा –

बप्पा ने पच्चीस हजार नवयुवकों का एक दस्ता पीछे छोड़ दिया ताकि आवश्यकता पड़ने पर वे ताजादम युवक युद्ध में कूदकर किसी भी संकटपूर्ण स्थिति को जीत में बदल दें, पन्द्रह हजार ऊँट सवार भीलों को, जो धनुर्विद्या में अद्वितीय थे, सेना के पृष्ठ भाग में रखा। उनसे आगे दस हजार घुड़सवार खड़े किये और सबसे आगे की पदाति सेना को तीन भागों में विभक्त करके, दायें और बायें हिस्से को बलराम सिंह तथा रणबाघ सिंह की कमान में देकर स्वयं मध्य भाग में जा डटा।

हारित मुनि तथा महाराजा दाहिर की विधवा रानी भी सेना के साथ थे। धनुर्धारी भीलों के साथ दो अलग–अलग ऊँटों पर चढ़े ये दोनों, आमने–सामने हो रही सेनाओं को देख रहे थे। घोड़े पर सवार बलराम सिंह अपनी पंक्ति से आगे बढ़ा। फिर उसने कमर में रेशम की डोरी से बँधे हुए शंख को इस जोर से फूँका कि आस–पास की पहाड़ियाँ गूँज उठीं। उसके बाद उसने भारी गरजदार आवाज में कहा, "अरब सेनापति, तुम धर्मान्धता के वशीभूत होकर एक अमानुषिक कदम उठा रहे हो। भारतवासियों ने अरब वासियों का कुछ नहीं बिगाड़ा। इस कारण यहाँ पर खून की होली खेलना अनुचित है। मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम अपनी सेना को लेकर भारत से लौट जाओ और इस पवित्र भूमि को मारकाट का मैदान बनाकर निर्दोष व्यक्तियों की हत्या का पाप अपने सिर पर न लो। स्मरण रखो कि भारतवर्ष हिन्दुओं का है। हम किसी विदेशी के अपवित्र कदमों को यहाँ सहन नहीं कर सकते और अपने अधिकार की रक्षा के लिए सिर को हथेली पर रखे यहाँ आ पहुँचे हैं।"

अरब सेनापति सलीम के आदेश से एक अरब सरदार ने आगे बढ़कर उत्तर दिया, "हिन्दुओं! अल्लाह–त–आला ने सारी दुनिया की जमीन और सारे देश मुस्लिम मुजाहिदों के प्रभुत्व और मुस्लिम खलीफा के शासकत्व के लिए वक्फ कर दिये हैं और हमारे रसूले–मकबूल ने तबलीगे–इस्लाम की मशाल हमारे हाथ में देकर यह कर्त्तव्य भी हमें सौंपा है कि हम उसे लेकर दुनिया के चप्पे–चप्पे से कुफ्र का अंधेरा दूर करते जायें। इसलिए देशप्रेम, शान्ति और

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

स्वतन्त्रता आदि बातों के ढोंग हमारे घोड़ों के रास्ते में बाधा उपस्थित नहीं कर सकते।"

बलराम सिंह ने क्रुद्ध होकर घोषणा की, "बहुत अच्छा तो युद्ध आरम्भ समझिए।" उसने अपने दस्ते को आगे बढ़ने का इशारा करके अपना घोड़ा भी आगे बढ़ा दिया और विद्युत् की तरह वह अरब सरदार पर टूट पड़ा। मगर अरब पहले से ही तैयार था। सामने आये शत्रु पर उसने भाले का एक भरपूर वार किया किन्तु बलराम सिंह ने पैतरा बदलकर वार खाली कर दिया। अरब ने दूसरा वार करना चाहा किन्तु बलराम सिंह की तलवार बिजली की तरह चमकी और अरब का सिर लुढ़क कर दूर जा पड़ा। उसके बाद दोनों सेनाएँ गुत्थमगुत्था हो गयीं।

शस्त्रों के टकराने और हल्के नारों से पहले मद्धम सा शोर उठा और फिर प्रलयकारी आवाजें उठने लगीं। मैदान में पहले थोड़ा खून गिरा, परन्तु फिर नदियाँ बहने लगीं। इस ओर, उस ओर जहाँ दोनों सेनाएँ टकरा रही थीं, सिर, भुजाएँ, धड़, टाँगें कट–कटकर गिर रही थीं।

अरबों का यह अभिमान कुछ ही क्षणों में टूट गया कि हिन्दू बेचारे लड़ना क्या जानें। उधर जोश भरे हिन्दू युवकों ने भी समझ लिया कि अरब भी हलवे का ग्रास नहीं, जिसे आसानी से निगला जा सके। दोनों ओर का आवेश प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा था। रणक्षेत्र में भयानक साके हो रहे थे। हिन्दू वीरों ने वह जौहर दिखाये कि अरबों की अधिकांश पंक्तियाँ टूट गयीं, वे पीछे हटने लगे। यह देखकर अरब सेनापति सलीम के दिमाग में एकाएक आशंका कौंधी, क्या अरब मुजाहिदों की यह महान् सेना काफिरों के हाथों पराजित हो जायेगी ? इस विचार के आते ही उसे बड़ा जोश आया। उधर मुजाहिद भी किसी तरह की बात सोचकर भड़क उठे और उनके हाथों की थकान और शरीरों का शैथिल्य अकस्मात टूट गया। अन्तिम संघर्ष के लिए वे उद्यत हो गये। लड़ाई फिर तेज हो गयी।

परन्तु उनका यह जोश स्थायी सिद्ध न हुआ बल्कि इसका परिणाम यह निकला कि उनकी सारी पंक्तियाँ टूट–फूट गयीं तथा पराजय और भी निकट आ गयी। सेनापति सलीम के जी में आया कि खुद आगे बढ़कर लड़े और अपने

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

हार रहे सैनिकों का साहस बढ़ा कर उन्हें फिर से जमकर लड़ने के लिए कहे लेकिन असफलता और निराशा स्पष्ट रूप से आँखों के आगे नाच रही थी और उसे अपना यह विचार स्वयं ही हास्यास्पद लगा। कुछ क्षण वह किसी मानसिक संघर्ष में डूबा रहा। फिर उसने सफेद झंडा ऊँचा करवा दिया।

अरब सेनापति ने अपने सामंत को सन्धि का संदेश देकर भेजा। उसके क्षण भर बाद उसके दिल में अरब जाति के स्वाभिमान और धार्मिक गौरव की भावना ने एक तेज हलचल पैदा कर दी। जिन अरब मुजाहिदों ने कैसरों और खाकानों को राज्य सिंहासनों से उठाकर दासत्व और अधीनता के फर्श पर पटक दिया था, जिन्होंने अपने भालों की नोकों से सम्राटों और शासकों को अरबी खिलाफत के भवन की चौखट पर सिजदे करने के लिए बाध्य कर दिया था, उनके सेनापति का भारत के काफिरों से सन्धि की भीख माँगना ! यह विचार ही दिल और जान को घुला देने वाला था। वह सिर से लेकर पाँव तक ठंडे पसीने में नहा गया। वह अपनी गलती महसूस करके चौंककर संदेशवाहक को वापस बुलाने के लिए आवाज देना चाहता था। मगर तक तक वह दूर चला गया था और उसके दरम्यान अनेक शत्रु–पंक्तियाँ आ चुकी थीं। वह उसी तरह दिल पर चोट खाये, ऊँट की पीठ पर बैठा रहा। क्या यह संदेश भेजकर वह कोई ऐसी गलती कर बैठा था, जो अरब जाति की आन पर धब्बा लगाने वाली थी ? क्या उसका यह कार्य नासमझी या अदूरदर्शिता पर आधारित था ? नहीं, सन्धि की बात अरब स्वाभिमान के लिए भले ही घातक हो, उसकी अपनी इच्छा के भी विपरीत हो, पर समय की आवश्यकता कुछ ऐसी ही माँग कर रही थी। अरब सेना की शक्ति प्रतिक्षण कम होती जा रही थी। इसी बात से उसके उठाये गये कदम का समर्थन होता था। इतने में संदेशवाहक ने वापस आकर बप्पा की सलीम से प्रत्यक्ष मिलने की इच्छा उसे बतायी।

बप्पा रावल, उसके सरदारों और साथियों ने अरब सेनापति को अपने अधीनस्थ सरदारों के साथ अपनी ओर आते देखा। वह लोग इनसे चालीस कदम के फासले पर आकर रुक गये। बप्पा रावल की प्रार्थना पर सन्धि के बारे में सारी बातचीत का कर्त्तव्य हारित रासि ने अपने जिम्मे लिया। अरबों की ओर से सेनापति सलीम स्वयं बोला, "हिन्द लश्कर के सरदारों, नीतिकारों ने कुछ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

हालतें ऐसी करार दी हैं जबकि सुलह, जंग से बेहतर होती है। उन हालात की तफसील में न पड़कर, केवल उनको सही मानता हुआ मैं यह बेहतर समझता हूँ कि लड़ाई खत्म होकर हमारे दरम्यान बा–इज्जत सुलह हो जाये।"

हारित मुनि ने कहा, "अरब सेनापति! जब दो शत्रुओं की तलवारें टकराती हैं तो सारी बा–इज्जत बातें, फौलाद के टुकड़ों की झंकार के साथ मिट जाती हैं। इसलिए तुम इज्जत का प्रश्न तो छोड़ो। शेष रहा सन्धि का मामला, तो उसके बारे में मुझे विवश होकर कहना पड़ता है कि इस युद्ध में हमारे हजारों युवक शहीद हो गये हैं, घर–घर में शोक और दु:ख के पहाड़ टूट पड़े हैं और इस सारी बर्बादी की जिम्मेदारी आप लोगों पर है। हमारी अपरिपूर्य हानि की पूर्ति के लिए आप क्या तावान (क्षतिपूर्ति) देंगे ? देखें, आप क्या पेश करते हैं ताकि उसी मामले को दृष्टि में रखते हुए सन्धि के बारे में विचार किया जाये।"

सलीम ने उत्तर दिया, "सिन्ध की अरब हुकूमत के बारे में तो हम कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि उसका मामला सीधे दरबारे–ख़िलाफत से सम्बन्ध रखता है। वह जाने, उसका काम। मगर हम तुम्हारे देश से अपनी फौजें हटाकर वापस अपने वतन दमिश्क चले जायेंगे।"

हारित मुनि के चेहरे पर व्यंग्यभरी हल्की सी मुस्कान फैल गयी। वह कहने लगा, "हिन्दुस्थान हमारा है। पराजित होकर चले जाने में कौन सी बड़ी भारी कृतज्ञता है ? यदि तुम इसे न छोड़ोगे तो हम तलवार के जोर से तुम्हें बाहर निकाल देंगे।"

"तो तुम अपने नुकसान के लिए हर्जाना तलब करते हो।"

"हाँ।"

"बहुत अच्छा। सोने और चाँदी की कुछ सलाखें हमारे पास हैं... मगर आशा नहीं कि इतने थोड़े से द्रव्य की मात्रा तुम्हें सन्तुष्ट करने के लिए काफी हो।"

"हम सोना–चाँदी नहीं माँगते।"

"तो फिर ?"

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

हारित मुनि एक क्षण तक चुपचाप सलीम को देखता रहा। फिर बोला,

"सेनापति, सच तो यह है कि तुम हमारे सैनिकों की विजय और अपने सैनिकों की मृत्यु के भय से सन्धि की पुकार करने लगे हो और दिल की सफाई या अपनापन इसमें कुछ भी नहीं है। सन्धि तभी हो सकती है जबकि दिल से वैर भाव निकाल दिया जाये। हम भारतीय अकारण लड़ना–झगड़ना कदापि पसन्द नहीं करते। मानव का रक्त बहाना हमारी परम्परा के प्रतिकूल है। बनावटी समझौता भी हमें पसन्द नहीं। हिन्दुस्थान अरब मैत्री की प्राप्ति के लिए सदा तैयार रहेगा और इसे अपना सौभाग्य समझेगा लेकिन शर्त यह है कि इस समझौते में मैत्री सच्ची हो, हम शत्रुता की बजाय प्रेम करने लगें। अरब सालार, इतिहास की आज पुनरावृत्ति हो रही है। सम्भवतः तुम्हें पता ही हो कि शताब्दियों पूर्व सिकन्दर के एक सेनापति सेल्यूकस ने इसी प्रकार भारत पर आक्रमण किया था।"

"हाँ, अच्छी तरह। इस घटना का विवरण इतिहास की पुस्तकों में पढ़ा था।"

"आप अपनी जाति या धर्म को उन प्राचीन यूनानियों से श्रेष्ठ समझते हैं या नहीं, इस बात से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। हमारी दृष्टि में पुराने यूनानियों और अरबों में कोई भेद नहीं। वे यूनानी–साम्राज्य के विस्तार के लिए आक्रमण करते थे और आप अरब–साम्राज्य को फैलाने के लिए शान्त और तटस्थ देशों में खून–खराबा करते घूम रहे हैं। वे अपने देवताओं की इच्छा तथा अपनी नस्ली वरीयता का ढोंग रचकर, नर–हत्या के अक्षम्य पाप को उचित बताते थे और तुम अपने नये मजहब के प्रचार के खुदाई कर्त्तव्य की आड़ लेकर, अपने अत्याचारों को ठीक समझते हो। धर्मान्धता और अभिमान ने न सिकन्दर और सेल्यूकस के सैनिकों को न्याय और सत्य के प्रकाश की ओर जाने दिया और न ही ये अरब मुजाहिदों को जाने देते हैं। अरब के विद्वान् यदि विद्या तथा विज्ञान के अध्ययन के लिए यहाँ आते तो इस गये–बीते युग में भी भारत के पंडित उन्हें मानवता, अध्यात्म, तथा तत्त्वज्ञान आदि विषयों की ऐसी अछूती जानकारी देते कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। खैर, इस सन्धि की वार्ता में मैं पुनः इतिहास का उल्लेख करता हूँ और आपको याद दिलाता हूँ कि उस समय भी भारतीय देशभक्तों ने सिरों को हथेली पर रखकर सेल्यूकस की

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सेना से टक्कर ली थी और उन्हें सन्धि कर लेने के लिए बाध्य कर दिया था।" हारित मुनि ने सगर्व कहा।

सलीम बोला, "इतिहास साक्षी है, सुलह हो गयी थी।"

"और आज भी वैसी ही हालत है। हमारे सेनापति बप्पा रावल, चन्द्रगुप्त के स्थान पर हैं और आप सेल्यूकस के स्थान पर।"

"निःसंदेह, एक बड़ी हद तक हालत उसी हालत से मिलती है।"

"बड़ी हद तक क्या, एक--एक घटना, एक—एक बात और एक—एक अवस्था ठीक वैसी ही है। यहाँ तक कि जिस प्रकार सेल्यूकस की पुत्री हेलेन भारत देखने उसके साथ आयी थी, उसी प्रकार तुम्हारी बेटी मय्याह भी आज तुम्हारे साथ है। जैसे हेलेन की माँ बचपन में मर चुकी थी, वैसे ही मय्याह की माँ का निधन भी इसके बचपन में ही हो गया था। और तो और, सेल्यूकस और सलीम, तुम्हारी नामराशियाँ भी एक ही हैं।"

"प्रतिष्ठित साधु, तुम्हारी जानकारी तुम्हारी कौम के युवकों की तलवारों की तरह तेज और बेपनाह है।"

"खैर, इतिहास से आपको यह भी ज्ञात हुआ होगा कि जब चन्द्रगुप्त और सेल्यूकस की सन्धि हुई तो सबसे बड़ी शर्त उस सन्धि की यह थी कि उस सद्भावना और प्रेम को सुदृढ़ बनाने के लिए, जिसके लिए दोनों पक्ष उतावले थे, सेल्यूकस अपनी पुत्री का विवाह चन्द्रगुप्त से कर दे। इसका प्रयोजन यह था कि न केवल दिलों का वैर दूर हो, बल्कि दो वीर शासकों का रक्त मिलकर एक हो जाये।"

सलीम उस ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार करता हुआ बोला, "यह सच है।" परन्तु इससे अधिक वह कुछ न कह सका। एक भयानक आशंका ने उसके दिल को अपने पंजे में लेकर मसल डाला। वह बड़ा ही बेसमझ होता यदि साधु का अभिप्राय न समझ पाता।

यह बात सुनकर बप्पा रावल एक बार चौंका। बलराम सिंह और रणबाघ सिंह भी आश्चर्य से हारित मुनि की ओर देखने लगे। पर कोई कुछ न बोला। हारित मुनि अटल और चमकती हुई आँखों से सलीम को पूर्ववत देखता हुआ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

बोला, "तो अरब सेनापति, इतिहास को अपना चक्र पूरा करने दो। यह सन्धि भी उसी तरह हो।"

अरब सरदारों की छाती में मानो किसी ने घूँसा मारा। हारित की वाणी सुनकर उनके सिर चकराये और दिल अकस्मात धड़कना भूल गये। सलीम ने उसके उत्तर में कोई कठोर शब्द कहने के लिए अपना मुँह खोला किन्तु दूरदर्शिता के कारण फिर उसके होंठ सीप की भाँत बन्द हो गये। एक क्षण तक वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा हुआ, सामने की ओर ताकता रहा, फिर उसकी नजरें घूमकर युद्ध क्षेत्र पर जा लगीं, जहाँ पग–पग पर भयानक साके हो रहे थे, भारतीय योद्धा शत्रु के जीवन रूपी खलियान पर तलवार के अंगार बरसा रहे थे। उनके मुकाबले में अरबों का जोर घटता जा रहा था और उनकी तलवारों की काट मन्द पड़ गयी थी।

सलीम ने एक ठंडी आह भरी फिर वह हारित को सम्बोधित करके बोला, "हिन्दुस्थानी फकीर, तुम्हारे शब्दों ने हमारे शीशा–ए–दिल को चूर–चूर कर दिया है। यदि सन्धि की बातचीत की हमारी विवशता न होती तो हमारा उत्तर कुछ और ही होता। मुझ सलीम की बेटी की, हिन्दू सेनापति के साथ शादी की कोई सम्भावना यदि है तो तभी यदि तुम्हारा सेनापति इस्लाम स्वीकार कर ले।"

"हा–हा–हा", हारित मुनि ने अट्टहास किया, "मेरे दोस्त, तुम अपनी पराजय को भी विजय में बदलना चाहते हो।" सलीम ने एक फरेरी ली और बोला, "मगर हमारा मजहब इजाजत नहीं देता कि एक मुसलमान लड़की का विवाह किसी गैर–मुस्लिम से हो।"

झुर्रियों से लदे हुए चेहरे वाली स्वर्गीय महाराजा दाहिर की विधवा जो अब तक चुपचाप खड़ी थी, अब एक पग आगे बढ़ी और भीषण व्यंग्य भरे शब्दों में कहने लगी, "तुम्हारा मजहब इस बात का निषेध करता है कि एक मुसलमान लड़की गैर–मुस्लिम से ब्याही जाये, मगर ऐसी अनुमति वह कैसे देता है कि तुम हिन्दू लड़कियों को बलपूर्वक अपने घरों में खींच लाओ और उनसे शादियाँ रचाओ ? क्या तुम्हारे मजहब में न्याय का यही स्तर है कि अधिकारों का पलड़ा तुम्हारी ओर ही झुका रहे ?"

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सलीम को इस बात का उत्तर न सूझा। उसने उस ओर से मुँह फेर लिया

और हारित मुनि को सम्बोधित करते हुए बोला, "युद्ध में तो एक से अधिक शत्रु मुझ पर वार कर सकते हैं, पर क्या इस समय भी मुझे एक से अधिक व्यक्तियों के प्रश्नों का उत्तर देना पड़ेगा। आपकी शर्त तलवारों से ज्यादा काट करने वाली है मुनिवर, तो भी हम....." वह चुप हो गया। पूरी तरह झुकने से पहले उसकी कौमी गैरत ने फिर जोर मारा। उसके मस्तिष्क में विभिन्न प्रकार के परस्पर विरोधी विचारों की आँधी एक बार फिर चलने लगी, जो उसकी बुद्धि और निर्णय करने की शक्ति को तिनकों की तरह न जाने कहाँ उड़ा ले गयी। वह सोचने लगा, 'इस शर्त को मानकर तो केवल अपमान ही सहन करना पड़ेगा। परन्तु इन्कार करके अपमान, पराजय और मृत्यु तीनों का सामना करना पड़ेगा, न केवल अकेली मय्याह वरन् अन्य अरब नारियाँ भी इन्हीं काफिरों की दया पर होंगी।' अन्ततोगत्वा हारित मुनि की शर्त मान ली गयी। सूर्यास्त के बाद अरब सेना के पृष्ठ भाग से काठियों वाले ऊँट, जिनमें स्त्रियाँ सवार थीं, एक निश्चित स्थान तक ले जाये गये। एक हल्की बुदबुदाहट उठी। सैकड़ों मशालें एक साथ जल उठीं। फिर पवित्र अग्नि की ज्वालाएँ आह्लादकारी सुगन्धियुक्त धुएँ में लिपटी चमकती दिखायी दीं, पूर्ण निस्तब्धता के गह्वर से एक लययुक्त प्रभावपूर्ण ध्वनि वायुमण्डल को पुनीत बनाने लगी मानो कोई समर्थ ब्राह्मण अपने यजमान की पुत्री की विवाहवेदी के पास बैठा वेदमन्त्रों का उच्चारण कर रहा हो। (श्री सय्याह सुनामी की अधो–टिप्पणी के अनुसार, यह तथ्य श्री शिवव्रत लाल वर्मन एम.ए. द्वारा रचित "बप्पा रावल" नामक पुस्तक के इक्कीसवें अध्याय और पृष्ठ संख्या १३० से लिया गया है।)

## (ङ) कन्नौज नरेश यशोवर्मन तथा कश्मीर सम्राट् ललितादित्य

इतिहासकार आर.सी. मजूमदार के अनुसार, कन्नौज नरेश यशोवर्मन (७००–७४० ई.) के बारे में जो यह वर्णन मिलता है कि उसने पारसिकों को हराया, उसका संकेत सिन्ध के अरबों के विरुद्ध उसकी विजय से ही है। चचनामा के अनुसार, मुहम्मद–बिन–कासिम मुलतान से फौज लेकर कश्मीर की सीमा तक गया और उसने एक फौज कन्नौज की तरफ भी भेजी। लेकिन इससे पहले कि वह कोई सफलता प्राप्त कर पाता खलीफा के हुकुम से उसका कत्ल

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कर दिया गया। कन्नौज के विरुद्ध भेजी गयी सेना को कोई सफलता न मिल सकी।

अरब इतिवृत्त मुहम्मद–बिन–कासिम की कश्मीर और कन्नौज पर चढ़ाई का कोई उल्लेख नहीं करते, सिर्फ किरज पर उसकी जीत का जिक्र करते हैं। चूँकि किरज या कीर देश की कांगड़ा से शिनाख्त की जाती है, इसलिए मुहम्मद–बिन–कासिम अवश्य ही कश्मीर और कन्नौज की सीमाओं के करीब पहुँचा था। जुनैद ने दोबारा किरज को जीता लेकिन उसकी सफलता भी अल्पकालिक ही सिद्ध हुई। कन्नौज के राजा यशोवर्मन और कश्मीर के राजा ललितादित्य, दोनों ने ही इस दिशा में अरबों को आगे बढ़ने से रोक दिया। इन दोनों राजाओं ने चीन के सम्राट् के पास भी अपने राजदूत भेजकर अरबों के खिलाफ मिलकर लड़ने का आग्रह किया था और यद्यपि चीन की ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला था, फिर भी यह दोनों खुद अपने ही प्रयत्नों से अरबों को हराने में सफल हुए। इस तरह यशोवर्मन व ललितादित्य ने एक साथ मिलकर अरब हमलावरों से भारत की रक्षा के उदात्त लक्ष्य हेतु कार्य किया था, लेकिन जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, दोनों का परस्पर संघर्ष हुआ, जिसमें ललितादित्य विजयी रहा। इस प्रकार आठवीं शताब्दी ई. के मध्य तक, जबकि इस्लामी जगत् में होने वाली महान् क्रान्ति के परिणामस्वरूप अरब में उमैयदों के हाथ से मुख्य सत्ता निकल कर अब्बासिदों के हाथ में पहुँच गयी थी, भारत में भी इस्लाम की शक्ति और प्रतिष्ठा क्षीण हो गयी और केवल सिन्ध के ही कुछ भागों में अरब किसी तरह अपने अस्तित्व को बनाये रख पाये।

उन दिनों अरब कश्मीर की सीमा तक पहुँच गये थे और उन्होंने कांगड़ा पर कब्जा कर लिया था। इसलिए ललितादित्य ने उनका मुकाबला इस क्षेत्र में ही किया। यह तथ्य कि भारत में अरबों को एक भी स्थाई सफलता नहीं मिल सकी, सिद्ध करता है कि यहाँ के शासकों ने उन्हें पूरी तरह हरा कर निःशक्त कर दिया था।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# ११. कम्बोज (अफगानिस्तान) विजय

पंजाब एवं कन्नौज से लेकर दक्षिण भारत तक के अभियान में एक के बाद एक शानदार विजय ने ललितादित्य मुक्तापीड़ के राज्य विस्तार को एक ऐसे शक्तिशाली साम्राज्य का रूप प्रदान कर दिया, जो गुप्त साम्राज्य के ह्रास (५७० ई.) के बाद से तब तक देखने में न आया था। निरन्तर प्राप्त अपनी विशिष्ट सफलताओं के बाद ललितादित्य ने कश्मीर के उत्तर में सीमावर्ती क्षेत्रों की ओर ध्यान केन्द्रित किया। उसका राज्य कराकुरम पर्वत श्रृंखला के दूरतम स्थान तक विस्तृत था। भारत से चीन तक के सभी दर्रों पर उसका अधिकार था। जैसा कि हम पहले वर्णन कर चुके हैं, अरब आक्रमण पहले ही ईसा की आठवीं शताब्दी के शुरू से काबुल घाटी पर दस्तक दे रहा था।

सिन्ध की मुस्लिम सत्ता, जो उत्तर की ओर बढ़ने की कोशिशों में लगी थी, को तो ललितादित्य व अन्य भारतीय राजा काफी हद तक निःशक्त कर चुके थे। अतः ललितादित्य के लिए अब अपने प्रभुत्व–विस्तार हेतु उत्तर दिशा के उन क्षेत्रों पर ध्यान देना आवश्यक था, जहाँ अरब, तुर्क, भोट और दरद आदि लोग उत्पात मचा सकते थे।

उन दिनों वर्तमान अफगानिस्तान के काबुल और गांधार आदि क्षेत्रों में शाही राज्य पर अरब आक्रमण हो रहे थे। हम जानते हैं कि कम्बोज (वर्तमान अफगानिस्तान) आधुनिक पामीर पठार के दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग ११२५ किलोमीटर तक फैला हुआ है। इसके उत्तर में तुर्कमेनिस्तान उजबेकिस्तान, ताजिकिस्तान (पूर्व सोवियत संघ से अलग हुए देश) इसके साथ लगते हैं। पश्चिम में ईरान, दक्षिण एवं पूर्व में वर्तमान पाकिस्तान (तब हिन्दुस्थान) और

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

उत्तर पूर्व में चीन का सिंकियांग क्षेत्र है। अफगानिस्तान के अन्दर उत्तर में तुर्किस्तान के मैदानी भाग को छोड़ कर शेष क्षेत्र ऊँचे–ऊँचे पहाड़ों और ऊँचे पठारों वाला इलाका है। इसका बड़ा पहाड़ी सिलसिला हिन्दूकुश है।

यूनान के सिकन्दर ने अफगानिस्तान को रौंद डाला था। उसकी मृत्यु के बाद यह क्षेत्र सेल्यूकस के अधिकार में आया था और सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ युद्ध में उसकी पराजय (३०५ ई.पू.) पर दोनों के बीच हुई सन्धि के अनुसार सेल्यूकस ने अपनी बेटी की डोली के साथ काबुल, कंधार और हेरात के क्षेत्र भी दिए थे। तत्पश्चात् अफगानिस्तान मौर्य वंश के अधिकार में रहा। इस दौरान महाराजा अशोक ने यहाँ बौद्ध मत का प्रचार किया, बौद्ध मंदिर व स्तूप स्थापित किए, जिन के खण्डहर आज भी मिलते हैं। तब से समूचा कम्बोज क्षेत्र (अफगानिस्तान) काफी अर्से तक बौद्ध मत का गढ़ रहा है।

मौर्य वंश के बाद पार्थियों और शकों ने अफगानिस्तान पर अधिकार कर लिया। कनिष्क के शासनकाल में भी यहाँ बौद्धमत का खूब प्रचार हुआ। फिर हिन्दूकुश की दक्षिण पूर्वी घाटी में कुशानों का शासन उस समय तक रहा जब तक हूणों ने उनके क्षेत्रों पर अधिकार नहीं कर लिया। इन हूणों ने पाँचवी–छठी शताब्दी ई. पूर्व में अफगानिस्तान के उत्तरी और पूर्वी भागों पर पहले ही अधिकार कर लिया था। ईसा की सातवीं शताब्दी में अरबों ने अफगानिस्तान को जीतने की कोशिशें कीं।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ (सीमान्त गांधी) ने अपनी आत्मकथा में अफगानिस्तान के प्राचीन इतिहास का वर्णन तथा विश्लेषण करते हुए लिखा है, "हमारे इस देश (अफगानिस्तान) में विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के दौर व्यतीत हो चुके हैं। एक समय था जब यह इलाका आर्य सभ्यता की लीला भूमि था। फिर इस देश में बौद्ध मत का युग आरम्भ हुआ। इस युग में हमारे देश ने बहुत उन्नति की और यह एक महान शिल्प–ज्ञान व सभ्यता के निशान छोड़ गया। आज भी महात्मा गौतम बुद्ध की दो भव्य और विराट मूर्तियाँ ब्रामियान में मौजूद हैं, जो संसार भर में महात्मा बुद्ध की सबसे बड़ी मूर्त्तियाँ हैं और पर्वतांचल में मूर्त्तिकला का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत कर रही हैं। (उल्लेखनीय

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

है कि इन महान् कलाकृतियों को सन् २००१ ई. में संसार भर के विरोध के बावजूद अफगानिस्तान के तालिबान शासकों ने अपनी घोर धर्मान्धता तथा दूषित मानसिकता का परिचय देते हुए तोपों से गोलाबारी कर खण्डित कर दिया था।)

"बामियान के पर्वतांचल में महात्मा बुद्ध की इन विराट् मूर्तियों के चारों ओर पर्वत में स्थान–स्थान पर गुफाएँ या गुहा–मन्दिर बने हैं। इन गुहा–मंदिरों में बौद्ध धर्म के साधक, भिक्षु, नेता, आध्यात्मिक गुरु और शिष्य रहा करते थे। बामियान के अतिरिक्त जलालाबाद के निकटवर्ती इलाके में हड्डा के स्थान पर बौद्धधर्म का महान विश्वविद्यालय था, जिसके भग्नावशेष अभी तक मौजूद हैं। यही महिमा तक्षशिला (टैक्सिला) को प्राप्त थी। इन स्थानों पर पाये गये तक्षण–शिल्प मूर्त्तिकला, वास्तुकला, दारुशिल्प के नमूनों से मालूम होता है कि उस समय हम पठान लोग एक उत्कृष्ट सभ्यता और समुन्नत संस्कृति के धनी थे। हमने इतनी उन्नति की थी कि अपने देश से बाहर चीन और सुदूरपूर्व तक हमारे बाजू फैले हुए थे। इस प्रकार हमने अपनी संस्कृति और महात्मा बुद्ध के संदेश को संसार के अन्य भागों तक पहुँचाया।

"..... यदि हम इतिहास के धुँधलके में थोड़ा सा और भी पीछे चले जायें, तो पठानों का यह देश जो इस समय अफगानिस्तान और पख्तूनिस्तान के नाम से प्रसिद्ध है, मानव जाति के एक महान् कुल की लीला–भूमि रह चुका है। इतिहासकारों के अनुसंधान–कार्य से ज्ञात होता है कि आर्य जाति ने सबसे पहले इस देश में आमू नदी (आक्सस नदी) के किनारे अपनी आँखें खोली थीं और फिर इसी धरती पर उसने उन्नति का परम उत्कर्ष प्राप्त किया था।

".... पठान ऊँचे–ऊँचे दुर्लंघ्य पहाड़ों और दर्रों में आबाद थे और बाहर के प्रभावों से अपेक्षाकृत सुरक्षित थे। पहाड़ों से घिरा हुआ यही देश 'आर्याना वेजो' था, जिसमें इतिहास के प्रथम पैगम्बर जरतुश्त ने जन्म लिया। जरतुश्त बलख के रहने वाले थे। बाद में वे ईरान चले गये। परन्तु उनकी पुस्तकें बलख के स्तुति–गान से भरपूर हैं। इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि यही वह भूमि थी, जहाँ हिन्दुओं के पवित्र वेद की ऋचाओं ने जन्म लिया और यही वह देश

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

है, जिसके एक सपूत पाणिनि ने संस्कृत भाषा का व्याकरण लिखा और उसे एक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह पाणिनि सिन्ध नदी की तटवर्ती तहसील सवाबी का निवासी था। ....

"हमारे इस देश में बाद को इस्लाम आया। परन्तु इस्लाम जिस समय इस देश में आ रहा था, उस समय उसमें वह आध्यात्मिक आलोक, ईश्वरीय विचार, त्याग और तपस्या का भाव बाकी नहीं रहा था, जो इस्लाम के पैगम्बर लाये थे।"

'राजतरंगिणी' के अनुसार, उज्जयिनी की विजय के बाद सम्राट् ललितादित्य सब दिशाओं के निकटवर्ती राजाओं को परास्तप्राय मान कर पथविहीन उत्तरापथ की ओर अग्रसर हुआ। उस ओर उग्र प्रकृति वाले राजाओं के साथ उसे पद–पद पर युद्ध करना पड़ा।

तदनन्तर और आगे बढ़ने से पहले ललितादित्य ने अपने उत्साह एवं प्रेरणा के नवस्फुरण हेतु राजपुरोहित से वार्तालाप किया। राजा ने पूछा, "हिमालय पर्वत के आसपास का यह उत्तरी भाग अति दुस्तर तथा विकट है। प्राचीन इतिहास के आधार पर यह बताने की कृपा करें कि पूर्वकाल में भारत के किस प्रतापी राजा ने इस दुर्गम क्षेत्र को कैसे विजय किया था।"

राजपुरोहित ने उत्तर में कहा, "महाराज, त्रेता युग में महाप्रतापी राजा रघु की उत्तरापथ की पराक्रमपूर्ण विजययात्रा को जो वर्णन कविकुलदिवाकर कालिदास ने अपने 'रघुवंशमहाकाव्यम्' में किया है, उसी का सार मैं आपके सम्मुख कहता हूँ। बंगाल, कलिंग तथा दक्षिण के अनेक राज्यों में अपनी विजय के डंके बजाने के बाद रघु महाराज ने पारसीक (फारस, वर्तमान ईरान) देश के म्लेच्छ राजाओं को जीतने के लिए स्थल–मार्ग से प्रस्थान किया। घुड़सवारों की युद्ध–विशारद सेना वाले पश्चिम दिशा के यवन राजाओं के साथ राजा रघु ने अपने धनुष–वाण की दिल दहला देने वाली टंकारों से घमासान युद्ध किया। परिणामतः युद्ध क्षेत्र की सारी धरती दाढ़ी–मूँछ युक्त वहाँ के पारसी सैनिकों के कटे हुए सिरों से ऐसे ढक गयी, जैसे कोई शहद का छत्ता मधु मक्खियों से ढक

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

जाता है। इसके पश्चात् शत्रु के बचे हुए सैनिक अपने–अपने शिरस्त्राण उतार कर रघु महाराज के सम्मुख आत्मसमर्पण कर उनकी शरण में आ गये। पश्चिम दिशा के देशों को जीतने के बाद रघु महाराज ने अपने वाणों से उत्तर दिशा के अधिपतियों को विजय करने के लिए उस ओर प्रस्थान किया। रघु की सेना के घोड़े निर्बाध रूप से बढ़ते हुए सिन्धु नदी तक जा पहुँचे।

"उत्तर दिशा में आमू (आक्सस) नदी के किनारे उनका संघर्ष हूणों के साथ हुआ। हूण रणक्षेत्र में भारी संख्या में मारे गये। कम्बोज (अफगानिस्तान) के राजा, महाराजा रघु के पराक्रम को सहन करने में सरासर असमर्थ रहे। अतः उन्होंने रघु महाराज के सामने अपना शीश झुकाया और उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। हारे हुए कम्बोज देश के हूण राजा बहुत से उत्तमोत्तम घोड़े और बहुमूल्य स्वर्ण–राशि उपहार स्वरूप लेकर कोसल नरेश उन रघु महाराज के पास उपस्थित हुए। कम्बोज क्षेत्र पर इस शानदार विजय के बावजूद रघु के मन में अहंकार का लेश मात्र भी पैदा न हुआ। उनके सामने दिग्विजय का अभी और भी कार्य शेष था। अतः काबुलियों को जीतने के बाद वे घुड़सवारों की विशाल सेना को लेकर घोड़ों के खुरों से, हिमालय स्थित अनेक धातुओं की धूलि उड़ाते तथा पर्वत की चोटी–दर–चोटी पार करते हुए आगे बढ़े।

"हिमालय पर्वत पर राजा रघु का वहाँ रह रहे उत्सव–संकेत नामक म्लेच्छ जाति के सात गणों के साथ भयंकर युद्ध हुआ। महाराजा ने वाणों से म्लेच्छों के उन गिरोहों को युद्ध में पराजित किया। म्लेच्छों ने वहाँ के मूल निवासी किन्नरों को बेहद त्रस्त कर रखा था। अतः महाराजा की इस विजय का उन मूल निवासी किन्नरों ने स्वागत किया तथा महाराजा का यशोगान किया। तब पर्वतीय उत्सव–संकेत नामक म्लेच्छ जाति के उक्त सातों गिरोहों के नेताओं ने विनयपूर्वक अपने हाथों में रत्नादि बहुमूल्य उपहार लेकर उनका स्तुतिगान किया। वातावरण राजा रघु की जय के घोषों से प्रतिध्वनित हो उठा। इस प्रकार दिग्विजय करते हुए महाराजा रघु हिमालय पर्वत पर अपनी अचल यशोपताका लहराकर कैलास पर्वत की सभी ऊँचाइयों को लज्जित करते हुए वहाँ से प्राग्ज्योतिष प्रदेश एवं कामरूप को भी विजित कर अयोध्या लौट आये

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

तथा विश्वजित यज्ञ कर अमर कीर्त्ति के भागी बने।"

"राजन्, आपने उत्तर दिशा में अपना विजय–अभियान प्रारम्भ करने का यह समय ठीक ही चुना है। इस समय इसकी परम आवश्यकता है", राजपुरोहित ने अपना कथन जारी रखते हुए कहा, "कम्बोज व तुखार आदि क्षेत्रों में वहाँ के वर्तमान शासकों के अत्याचार सभी सीमाओं को लाँघ रहे हैं। वहाँ के मूल निवासियों के पूर्वजों से सम्बद्ध सभी श्रद्धास्थल ध्वस्त कर उन पर मुस्लिम इमारतों का निर्माण किया जा रहा है। प्राचीन पूज्य ग्रंथों व श्रेष्ठ साहित्य को नष्ट कर प्राचीन सभ्यता के सभी चिह्न मिटाये जा रहे हैं। जिहाद के नाम पर मासूम और निर्दोष लोगों का खून बहाया जा रहा है। आम जनता त्राहि–त्राहि कर उठी है। शासक वर्ग नृशंस हत्याओं, अपहरण, लूटमार, बलात्कार तथा यातनापूर्ण उच्छृंखलताओं में लिप्त आतताइयों का समुच्चय मात्र है। अतः जनमानस में उसके विरुद्ध उभरा विद्रोह भी हमारे लिए सहायक सिद्ध हो सकता है। मेरी भविष्यवाणी समझिये कि हमारे आक्रमण का वेग वहाँ के दुष्ट शासक सहन न कर पायेंगे। वीरपुंगव, यही पुरुषार्थ का समय है। पराक्रम कीजिए, आप निश्चय ही महाराजा रघु के समान विजयश्री का वरण करेंगे।"

राजपुरोहित के इस परामर्श एवं आशीष–वचनों के एक–एक शब्द को राजा ललितादित्य ने ध्यान से सुना। शासन की ओर से कम्बोज क्षेत्र में भेजे गये गुप्तचर जो समाचार लाये थे, वह भी राजपुरोहित की बातों का अनुमोदन ही कर रहे थे। अतः कुछ ही दिनों के बाद पूरी तैयारी के साथ कम्बोज पर धावा बोल दिया गया। राजपुरोहित का कथन अक्षरशः सत्य निकला। कम्बोज के सैनिक गिनती की कुछ–एक झड़पों के बाद ही मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। राजा ललितादित्य की विशाल सेना के शूरवीरों की वे ताब न ला सके। भारतीय वीर आगे बढ़े, एक के बाद एक नगर को बड़ी सहजता से अपने कब्जे में लेते चले गये।

कहीं विरोध का स्वर नहीं। स्थान–स्थान पर आम लोगों ने राजा ललितादित्य का स्वागत किया, जयकारे लगाये, "सम्राट् ललितादित्य की जय! मुक्तापीड़ की जय!" प्रसन्नचित सम्राट् ने ऊँचे स्वर में कहा, "ललितादित्य की

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

जय नहीं, धर्म की जय कहो, सत्य और न्याय की जय कहो, जनता–जनार्दन की जय कहो, जन–पौरुष की जय कहो।"

लोगों में अपार हर्ष की लहर दौड़ गयी। 'धर्म की जय', 'न्याय की जय' आदि के स्वर और भी तीव्रता के साथ गूँजने लगे। सारा कम्बोज देश एक सिरे से दूसरे सिरे तक नये उत्साह और नयी चेतना से भर गया।

अब सम्राट् ने सैनिकों को उत्तर दिशा की ऊँचाइयों की ओर और आगे बढ़ने के निर्देश दिये। विजयोल्लास से फूले न समाते अश्वारोही सैनिक सम्मुख निमन्त्रण दे रहे शैल–शिखरों पर फैल गये और नयी विजय यात्रा के लिए दौड़ पड़े। अब उनकी दौड़ थी तुखार प्रदेश (तुषार = बलख तथा बदख़शाँ सहित उत्तरी आक्सस की घाटी का क्षेत्र, जो पूर्व की दिशा में चीन की सीमा तक फैला है) की ओर। सबके मन में एक ही तमन्ना थी, नित–नयी विजय प्राप्ति की।

☆

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १२. तुखारों (तुर्कों) पर विजय

अरब भूवृत्त–लेखकों के अनुसार तुखारिस्तान का क्षेत्र बलख और बदखशाँ को मिलाकर उनके बीच एक छोटा–सा प्रदेश था। आजकल यह इलाका वर्तमान अफगानिस्तान देश का पूर्वोत्तर प्रान्त है। इसका विस्तार वंक्षु (आक्सस, OXUS) नदी के आसपास बलख के पूरब में, बदखशाँ के पश्चिम में तथा बामियान और पंजशीर के उत्तर वाले पहाड़ों अर्थात् हिन्दूकुश.... कोहे बाबा के उत्तर में स्थित है। यह क्षेत्र पूर्व दिशा में चीन की सीमा तक फैला है। पूर्वकाल में इस क्षेत्र में हूणों की केन्द्रीय सत्ता थी, जिसे तुर्कों और ईरानियों की संयुक्त सेनाओं ने सन् ५६३ ई. और ५६७ ई. के बीच नष्ट कर दिया था। इससे उक्त क्षेत्र में हूणों की शक्ति लगभग समाप्त हो गयी थी और तुर्क ही हावी हो गये थे।

ललितादित्य की विशाल दिग्जयिनी सेना का मुकाबला करने में स्वयं को असमर्थ मान कर वहाँ पर रक्षक के रूप में नियुक्त तुखारगण भयभीत हो अपने घोड़ों को त्याग कर पर्वत श्रेणियों की चोटियों की ओर पलायन कर गये। ऐसी धूम और धाक थी ललितादित्य की वाहिनियों की। पर्वत–श्रृंखलाओं के निवासी अश्वमुख किन्नरों को देखकर वे तुखारगण उन्हीं की ओर आकृष्ट हो गये और ललितादित्य के सैनिकों के साथ युद्ध का विचार सर्वथा त्याग दिया। ललितादित्य ने वहाँ के तुर्क राजा मुम्मुनि पर आक्रमण किया। इतिहासकार एम.ए. स्टीन के अनुसार, 'मुम्मुनि' सम्भवतः ऊपरी सिन्धु के क्षेत्र के तुर्क कबीला के प्रमुख का पद अथवा पारिवारिक उपाधि थी। ललितादित्य ने इस तुर्क शासक मुम्मुनि को युद्ध में तीन बार परास्त करके ही पूर्ण रीति से पराजित माना, क्योंकि "वीर लोग एक बार की गयी शत्रु की पराजय को घुणाक्षर न्याय से (घुन लग जाने के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कारण केवल संयोगवश बने हुए अक्षरों की तरह) आकस्मिक समझते हैं।"

सम्राट् ललितादित्य की तुर्कों पर यह विजय इतनी महत्त्वपूर्ण तथा गौरवमय मानी गयी कि इसकी स्मृति में कश्मीर में हर वर्ष चैत्र–२ को 'विजय दिवस' के रूप में बड़े समारोहपूर्वक मनाया जाने लगा। सुप्रसिद्ध मुस्लिम इतिहास लेखक अलबेरूनी के अनुसार, उसके समय में अर्थात् ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी यह पर्व मनाया जाता था। उसके शब्दों में "चैत्र मास की दूसरी तिथि कश्मीर के लोगों के लिए अगदूस (अगद–उत्सव अर्थात् निष्कंटक उत्सव) नाम का पर्व है और उनके राजा मुत्तै (मुक्तापीड़) के तुर्कों पर विजय–लाभ करने के कारण मनाया जाता है।" (अलबेरूनी का भारत, अनुवादक : संतराम बी.ए., तीसरा भाग, ७६वाँ परिच्छेद, पृष्ठ २२८, त्योहार और आमोद–प्रमोद के दिनों पर।)



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १३. भोट भूमि (तिब्बत) तथा दरद आदि पर विजय

तुखारों (तुर्कों) पर अपनी शानदार विजय के बाद राजा ललितादित्य ने तिब्बत की ओर से मँडराते संकट की तरफ ध्यान दिया। तत्सम्बन्धी विवरण देने से पूर्व यहाँ तिब्बत के प्राचीन इतिहास के बारे में सामान्य जानकारी प्रस्तुत करना असंगत न होगा।

तिब्बती परम्परानुसार, तिब्बत आरम्भ में एक उजाड़ इलाका था, जहाँ कोई भी व्यक्ति नहीं रहता था। मैदानी इलाका होने के कारण यहाँ पानी बहुत था। कहा जाता है, पहले-पहल यहाँ एक भूतनी अर्थात् राक्षस की लड़की रहने लगी और उसके पश्चात् एक वानर इस देश में आया। इस वानर को 'विद्वान्' कहा जाता है। तिब्बत निवासियों का ख्याल है कि यह वानर भारत से आया था। कहते हैं कि यह भगवान् रामचन्द्र जी की भक्त-परम्परा से था। शनैः शनैः भूतनी तथा वानर का आपस में सम्बन्ध हो गया और वह पति-पत्नी की तरह रहने लगे। धीरे-धीरे उनके सन्तान भी पैदा होने लगी। तिब्बत क्योंकि एक बंजर देश था, वहाँ कुछ भी पैदा नहीं होता था। इसलिए वानर के लिए अपने परिवार का पेट भरना मुश्किल हो गया। वह अनाज की तलाश में भारतवर्ष पहुँचा। यहाँ से वह तरह-तरह के अनाज ले गया और जैसे उसे बताया गया था, उसने उन्हें तिब्बत के मैदान में बिखेर दिया। इस तरह वानर अपने परिवार को, जो काफी बढ़ चुका था, पालने लगा। कुछ समय पश्चात् भारतवर्ष का एक राजकुमार भूला-भटका तिब्बत पहुँचा। उससे विद्वान् वानर ने पूछा कि आप किसके आदमी हैं। इस पर राजकुमार ने आकाश की ओर इशारा करके कहा,

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

"भगवान् के"। वानर ने यह बयान सुनने के पश्चात् उसका स्वागत किया और कन्धे पर उठाकर अपना राजा मान लिया। इस तरह भारतीय राजकुमार तिब्बत में व्यठिचम्पों के नाम से राज्य करने लगा। तिब्बती भाषा में व्यठिचम्पों का अर्थ गर्दन पर चढ़ने वाला होता है।

कुछ दिनों के बाद राजा व्यठिचम्पों के महल–हम्बो लंखर, जोकि लालुंग में स्थित है, पर आकाश से संस्कृत में लिखी हुई एक पुस्तक तथा मूर्त्ति गिरी और आकाशवाणी हुई कि इस पुस्तक का अर्थ जानने वाला आज से पाँच पुश्त बाद होगा। हुआ भी वैसा ही। राजा व्यठिचम्पों के वंश से पाँचवीं पुश्त में राजा सुनचनगम्बो (SONGTSEN GAMPO) का जन्म हुआ और उसने इस पुस्तक का अर्थ निकाला। सुनचनगम्बो, 'भोट सम्राट्' के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसके राजगद्दी पर बैठने का समय सम्भवतः ६३२ ई. माना जाता है। उस समय उसकी आयु १३ वर्ष की थी। उसने राजकाज के लिए कुछ आदेश बनाने चाहे। परन्तु वहाँ विद्या का बिल्कुल अभाव था। लिपि तक का आविष्कार न हुआ था। अतः उसने तिब्बत से सात सौ विद्यार्थियों को खूब धन देकर भारतवर्ष में विद्या पढ़ने के लिए भेजा। उसके बाद उसने सारे तिब्बत में से छाँट कर थोकमिसम्पोटा नाम के एक योग्य लड़के को भारत भेजा। थोकमिसम्पोटा भारत (पश्चिमी बंगाल) के प्रकांड पंडित लिजन के पास पहुँचा। उनके पास गहन अध्ययन कर भारतीय लिपि के अनुसार उसने एक अलग लिपि बनायी, जोकि तिब्बती लिपि के नाम से प्रसिद्ध हुई। तिब्बत वापस आकर उसने राजा के कानून तथा अन्य कार्यक्रमों को लिपिबद्ध किया। तत्पश्चात् जो भी भारतीय ग्रन्थ उसे मिलते गये, वह उनको अपनी तिब्बती लिपि में लिखता चला गया। इस प्रकार उसने तिब्बती भाषा में अच्छा साहित्य तैयार कर लिया। राजा सुनचनगम्बो की पाँच रानियाँ थीं, जोकि नेपाल, चीन तथा खमस (पूर्वी तिब्बत) से थीं।

उल्लेखनीय है कि अलग–अलग इतिहासकारों ने तिब्बती नामों को अलग–अलग ढंग से लिखा है। श्री विद्यासागर शर्मा द्वारा लिखित 'तिब्बत की कहानी– लामा समन पलजर की जबानी' में दिये गये उपरोक्त राजा सुनचनगम्बो के नाम को फ्रांके ने अपनी पुस्तक 'ऐंटिक्विटीज आफ इंडियन टिबेट' में 'स्रोङ्–ब्त्सन–स्गम–पो' लिखा है। कहा जाता है कि उसने आसाम, नेपाल तथा

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

कुछ अन्य प्रदेशों को भी जीता था। इस राजा के साथ ही सातवीं सदी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में बौद्ध मत का प्रभाव बढ़ना शुरू हुआ।

राजा सुनचनगम्बो (स्रोङ्–ब्त्सन–स्गम–पो / सांग–सैन–गम्पो) ने नेपाल को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। उसने नेपाल के राजा अंशुवर्मन से उसकी बेटी के पाणिग्रहण का प्रस्ताव किया था और अंशुवर्मन इन्कार करने का साहस नहीं कर सका था। दो साल बाद (सन् ६३५ में) तिब्बत के इसी राजा ने चीन पर आक्रमण किया और लगभग त्सेचुआन तक चीन के क्षेत्र को लूटा–पाटा। उसने सन्धि की एक शर्त के अनुसार एक चीनी राजकुमारी की माँग भी की थी और इस चीनी राजा को भी मजबूर होकर अपनी एक बेटी की शादी इस तिब्बती राजा के साथ करनी पड़ी।

राजा सुनचनगम्बो की यह नेपाली तथा चीनी रानियाँ धर्मनिष्ठ बौद्ध थीं। वे सब्ज तारा तथा सफेद तारा के नाम से पुकारी जाती थीं। नेपाली रानी का नाम सब्ज़ तारा और चीनी रानी का नाम सफेद तारा था। उनके प्रभाव के कारण राजा ने भी बौद्ध मत अपना लिया। उसने बहुत से मन्दिर और मठ बनवाए और अनेक बौद्ध ग्रन्थों का अनुवाद करवाया। इस प्रकार तिब्बत में बौद्ध मत की नींव रखी गयी। बाद में जब बौद्ध मत तिब्बत में शक्तिशाली हो गया तो लोगों की दृष्टि में इस राजा का सम्मान अत्यधिक बढ़ा, यहाँ तक कि उसे महात्मा बुद्ध का अवतार 'अवलोक ईश्वर' माना गया।

चीन पर अपने पहले आक्रमण (६३५ ई.) के बाद तिब्बतियों ने अपनी युद्ध गतिविधियों को बड़े विलक्षण जोश के साथ सभी दिशाओं में बढ़ाना शुरू कर दिया था। उन्होंने सन् ६४८ ई. में भारत में (आसाम आदि की ओर) सैनिक अभियान किया था। करीब ६५० ई. में स्रोङ्–ब्त्सन–स्गम–पो का देहान्त हो गया। इसके बाद भी तिब्बत की आक्रामक नीति चलती रही। सन् ६७० ई. में उत्तर में चीनी तुर्किस्तान में चीन के चार मुख्य गढ़ों पर कब्जा कर पश्चिम के साथ चीन का संचार–सम्पर्क काट दिया गया तथा मध्य एशिया में तिब्बती साम्राज्य की नींव स्थापित हो गयी।

पश्चिम में तिब्बतियों ने हुञ्जा पर कब्जा कर लिया और वे स्वात, जिसके साथ उनके धार्मिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे, तक घुस गये। वे अरबों के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

साथ सम्पर्क में आये तथा पश्चिम में फरगाना एवं समरकन्द तक भी सैनिक कार्रवाई की। काफी समय तक अरबों के साथ उनके सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे। दक्षिण में तिब्बती, नेपाल के राज्य तथा हिमालय की भारतीय दिशा की पहाड़ी जातियों पर हावी हो गये थे। उनकी गतिविधियाँ बर्मा (वर्त्तमान म्यांमार) के उत्तरी भाग तक फैल गयी थीं।

सन् ७०२ ई. के करीब नेपाल तथा भारत के उत्तर पूर्व के अन्य सीमावर्ती राज्यों ने तिब्बती जुए को उतार फेंका और इसके विरुद्ध अभियान में तिब्बत का तत्कालीन राजा (७०४ ई. में) मारा गया। उसके बाद नया राजा गद्दी पर बैठा। इसका नाम ख्री–ल्दे–ब्त्सुग–ब्रत्न (KHRI-LDE-BTSUG-BRTAN) था, जो अपने कुलनाम मेस-अग-त्शोम्स (MES-AG-TSHOMS) (७०५-५५ ई.) से प्रसिद्ध है। ७०४ ई. की हार का बदला लेने के लिए वह प्रायः भारत पर धावा बोलता रहता था।

उधर चीन के लिए भी तिब्बती लगातार-परेशानी का कारण बने हुए थे। तिब्बती सेनाएँ तांग (TANG) साम्राज्य के काफी अन्दर तक घुस जातीं। तिब्बती सेनापतियों और मन्त्रियों ने चीन के पूरे कांसू (KANSU) प्रान्त तथा जचवान (SZECHWAN) व उत्तरी युन्नान (NORTHERN YUNNAN) के काफी बड़े भाग पर कब्जा कर लिया तथा वहाँ शासन करने लगे। उन दिनों तिब्बत और चीन समान स्तर की दो बड़ी ताकतें थीं। किन्तु वास्तव में तिब्बती ही लगातार रूप से आक्रामक थे और सामान्यतः उन्हीं का हाथ ऊपर रहता था।

चीन को जिस प्रकार तिब्बत के आक्रमणों का सामना करना पड़ रहा था, उसी तरह अरब आक्रमणकारियों के साथ भी चीन का प्रबल संघर्ष ७१९ ई. में हुआ । ७१०–१२ ई. में अरबों ने सिन्ध जीत लिया था। तभी दूसरी ओर वे मध्य एशिया में भी घुसे थे, पर ७१५ ई. में चीन की शक्ति पुनः चमकी थी और कास्पी समुद्र तक जा पहुँची थी। बलख और गजनी (जागुड़) तक के राजाओं को सहायता देकर चीन ने अरब बाढ़ रोकने को बाँध बनाये रखा था। विजयी होने पर चीन के सम्राट् ने स्वात, बदख़शाँ और चित्राल आदि के सरदारों को शाही प्रमाणपत्र दिये। ऐसा ही सम्मान यासीन, जाबलिस्तान यानी गज़नी, कैपसिया यानी उत्तर–पूर्वी अफगानिस्तान और कश्मीर का भी किया गया।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

चीनी सम्राट् ने कश्मीर नरेश चन्द्रापीड़ को भी सम्मानित किया था।

सम्राट् ललितादित्य के शासनकाल में बालटिस्तान तक बढ़ आये भोटों (तिब्बतियों) के विरुद्ध ललितादित्य ने अन्ततः अपने सफल अभियान में सिन्ध नदी के किनारों पर उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया। इससे पूर्व (७३३–७३६ ई. के बीच) उसने चीनी सम्राट् हुएन्त्सुंग (HUSAN-TSUANG) (७१३–७५५ ई.) के पास अपना दूत भेजा था और चीनी सम्राट् को वूलर झील के किनारों पर चीनी सहायक सेनाओं का एक शिविर स्थापित करने की भी अनुमति देने की पेशकश की थी ताकि तिब्बती आक्रामकों के विरुद्ध दमनकारी कार्रवाई संयुक्त रूप से की जा सके। ललितादित्य मुक्तापीड़ का चीनी सम्राट् को यह प्रस्ताव अरबों, जो सिन्ध और मुलतान के अपने आधार स्थल से आगे बढ़ रहे थे, के विरुद्ध साँझा युद्ध–मोर्चा खड़ा करने के लिए भी था। किन्तु चीनी नरेश ने सम्राट् ललितादित्य के राजदूत के भव्य सम्मान–सत्कार तथा मुक्तापीड़ को एक शक्तिशाली राजा स्वीकार करने तक ही अपने को सीमित रखा था। न तो वह तिब्बतियों से संघर्ष के लिए तैयार हुआ था और न ही अरबों के विरुद्ध कुछ करने को उद्यत।

इस प्रकार हमारे इतिहास का यह एक गौरवपूर्ण अध्याय कहा जा सकता है कि भारत के इस सम्राट् ने चीन या किसी अन्य शक्ति की किसी प्रकार की सहायता के बिना अकेले ही कम्बोज (अफगानिस्तान), तुखार (तुर्क) व भोट (तिब्बती) आदि उस समय की बर्बर तथा खूँखार शक्तियों को पराजित किया।

कश्मीर के उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम की ओर उसके सीमावर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में दरद जातियाँ निवास करती थीं। दरद राजवंश का किला सिन्ध नदी के किनारे पर केलेत्से (KALATSE) में स्थित था। केलेत्से का अब तिब्बतीकरण हो चुका है, लेकिन तब यह दरद राज्य का ही केन्द्रस्थल था। दरदों के शासन का विस्तार चित्राल और यासीन से लेकर गिलगित, चिलास (CHILAS) और बनजी (BUNJI) के सिन्ध नदी क्षेत्र के पार किशनगंगा की घाटी तक था। कश्मीर घाटी की सुरक्षा के लिए इन कष्टकारक तथा युद्धप्रिय पड़ोसियों के विरुद्ध कठोर अभियान की आवश्यकता ललितादित्य को अनुभव हो रही थी।
CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri
यह लोग निरन्तर मद्यपान करने वाले तथा अनाचारी थे और कश्मीर के सीमान्त

पर अनेक प्रकार के उपद्रव मचाते रहने के अभ्यस्त होने के कारण सम्राट् ललितादित्य के विशेष रूप से कोप के भाजन बने। अतः सम्राट् ने उनके विरुद्ध कठोर अभियान करते हुए उन्हें भलीभाँति दण्डित किया तथा उनके शासनाधीन समूचा क्षेत्र कश्मीर राज्य में शामिल कर लिया।

महाकवि कल्हण विरचित राजतरंगिणी के अनुसार, सम्राट् का अगला अभियान था प्राग्ज्योतिषपुर (गुवाहाटी, आसाम) की ओर। ललितादित्य की सेना के इस क्षेत्र की ओर बढ़ने का समाचार सुनकर वहाँ के लोगों ने भयभीत हो सारा इलाका खाली कर दिया और भाग खड़े हुए। तत्पश्चात् सम्राट् 'स्त्री–राज्य' (मणिपुर) की ओर बढ़ा। युद्ध हेतु मतवाले हाथियों अथवा शस्त्रों का प्रयोग करने का साहस यहाँ के लोगों को न हुआ। स्त्री राज्य की रानी जब काँपती हुई सम्राट् के सामने आयी तो सम्राट् ने उसे अभयदान दिया और उत्तरकुरु की ओर रुख किया। जिस प्रकार गरुड़ के भय से साँप बिलों में घुस जाते हैं, उसी तरह उत्तरकुरु देश के राजा विपत्ति काल में आश्रय देने वाले वृक्षों के झुरमुटों में जा छिपे। जैसे सिंह हाथियों को मार कर अपने पंजे में चिपकी गजमुक्ताओं (एक प्रकार के मोती, जो हाथी के मस्तक से निकलते हैं) के साथ माँद को लौटता है, उसी तरह राजा ललितादित्य विजयोपार्जित विपुल धनराशि अपने साथ लेकर कश्मीर मण्डल को लौटा।

सम्राट् ललितादित्य ने पराजित प्रदेशों के लोगों को दर्पदलन–सूचक अनेक चिह्न धारण करने की आज्ञा दी। इन चिह्नों को वे लोग आज भी एक रीति के तौर पर धारण करते हैं। सम्राट् की आज्ञा के अनुसार तुरुष्क (तुर्क) लोग आधा सिर मुँडाये रहते हैं। दाक्षिणात्यों को सम्राट् ने उन्हें अपनी धोती का पुच्छल्ला लटकाये रखने की आज्ञा दी थी, जो पूँछ की तरह दिखाई दे।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १४. महान् देव-स्थान निर्माता

अपनी विजय-यात्राओं के बाद कश्मीर वापस लौट कर सम्राट् ललितादित्य ने अपने अनेक प्रमुख अधिकारियों को पारितोषिक रूप में कई राज्य अर्पित किये। इस ढंग से उसने अपने आश्रितों को जालन्धर, लोहर (लाहौर) तथा अन्य इलाके देकर राजा बना दिया। तत्कालीन जालन्धर राज्य में ब्यास (Beas) नदी के ऊपर के क्षेत्र का पहाड़ी इलाका तथा विशेषतः कांगड़ा (या त्रिगर्त) भी शामिल था। त्रिगर्त, कांगड़ा के वर्तमान पहाड़ी जिला, जो चम्बा की पहाड़ियों और ब्यास नदी के ऊपरी क्षेत्र के बीच स्थित है, से अभिन्न है। त्रिगर्त का एक नाम नगरकोट भी कहा गया है।

ललितादित्य अपने समय का महान् निर्माणकर्त्ता यशस्वी राजा था। उसने असंख्य देव मन्दिरों का निर्माण कराया। कल्हण के अनुसार, उस स्वाभिमानी राजा ने कहीं कार्य के अनुकूल और कहीं समय के अनुरूप उन प्रतिष्ठानों की स्थापना की। उसने दिग्विजय के निश्चय के स्मारक रूप में सुनिश्चितपुर नामक नगर बसाया और दिग्विजय करके लौटने पर दर्पितपुर बसा कर उसमें केशवदेव (भगवान् विष्णु) की प्रतिमा स्थापित की। इसी तरह विजय के समय जहाँ फल लिया था, वहाँ फलपुर और जहाँ पत्ते लिये थे, वहाँ पर्णोत्स नगर (वर्तमान पुंछ) बसाया। जहाँ उसने क्रीड़ा की थी, वहाँ क्रीड़ाराम नाम का विहार बनवा दिया। स्त्री राज्य में उसने नृसिंह भगवान् की ऐसी मूर्ति स्थापित की, जिसमें नीचे तथा ऊपर चुम्बक रहने के कारण मूर्ति हवा में निराधार रुकी रहती थी। राजा ललितादित्य चाटुकारिता के प्रति इतना सजग तथा विरुद्ध था कि जब वह दिग्विजय के प्रसंगवश बाहर था, तभी उसका काम देखने वाले एक अधिकारी ने उसके नाम पर ललितपुर नाम का एक नगर बसा

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

दिया जिसके लिए उसे बाद में राजा के क्रोध का शिकार होना पड़ा। तदनन्तर राजा ने ललितपुर में आदित्य (सूर्य) भगवान् को स्थापित करके उसकी पूजा का कार्य संचालित करने के लिए विजय द्वारा प्राप्त कान्यकुब्ज क्षेत्र के अनेक गाँव उदारतापूर्वक उस मन्दिर के नाम लगा दिये। उसी प्रकार उस महात्मा राजा ने हुष्कपुर में श्रीमुख स्वामी की स्थापना करके एक बहुत बड़े विहार (बौद्ध भिक्षुओं का मठ) तथा स्तूप का निर्माण करवाया।

राजा ललितादित्य केवल एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ लेकर दिग्विजय के लिए निकला था। किन्तु जब वह लौटा तो ग्यारह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ शंकर भगवान् को अर्पित करके प्रायश्चित किया। उसने वहाँ ज्येष्ठेश्वर रुद्र का पाषाण मन्दिर बनवाया और उसका खर्च चलाने के लिए बहुतेरे गाँव प्रदान किये। चक्रधर नामक स्थान में उसने वितस्ता नदी पर कई रहट लगवा कर गाँवों में जल पहुँचाने का प्रबन्ध किया। तदनन्तर उसने बड़े–बड़े प्रस्तर खण्ड़ों से निर्मित चारदीवारी से आवेष्ठित तथा अंगूर की लताओं से शोभित एक नगर बसाया और उसमें मार्त्तण्ड (सूर्य) भगवान् की स्थापना की।

उस दिग्विजयी राजा ने लोकपुण्य में विष्णु भगवान् को स्थापित करके उन्हें अनेक ग्राम एवं बहुतेरे सामग्री–साधन अर्पित किये। देवराज इन्द्र तुल्य प्रभावशाली उस राजा ने अमरावती पुरी का परिहास करने वाला परिहासपुर नगर बसाया और उसमें परिहास केशव नाम की रजतमयी मूर्त्ति स्थापित की। उन भगवान् परिहास केशव का स्वरूप क्षीरसागर शायी विष्णु के मोतियों जटित आभूषणों की ज्योति से उज्ज्वल शरीर की तरह चमकीला था। राजा ने मुक्ताकेशव नामक विष्णु भगवान् की एक स्वर्णमयी मूर्त्ति भी स्थापित की, जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल वाली केसर जैसे पीले रंग की थी। उसके द्वारा स्थापित वराह भगवान् की स्वर्णकवचधारिणी प्रतिमा पाताललोक में विद्यमान् गहरे अंधेरे को नष्ट करने के लिए प्रभा सम्पन्न सूर्य नारायण के समान देदीप्यमान दिखती थी। इसी तरह उसने गोकुल की गौओं के दूध की तरह सफेद श्रीगोवर्धनदेव की रजतमयी प्रतिमा स्थापित की थी। चौवन हाथ ऊँचा एक पाषाण स्तम्भ बनवा कर उसके सिर पर साँपों के शत्रु गरुड़ जी की स्थापना की। उस निरभिमानी राजा ने बड़े–बड़े चौमहले भवनों, विस्तृत चैत्यों

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

एवं विशाल जिन (जैनों के तीर्थंकर) मूर्त्तियों युक्त राजविहार का भी निर्माण कराया। उसमें उस राजा ने चौरासी हजार तोले सोने का उपयोग किया था। उतना ही अर्थात् चौरासी हजार तोले चाँदी का उपयोग करके उस शुद्धबुद्धि राजा ने श्री परिहास केशव की प्रतिमा बनवाई थी। भगवान् बुद्ध की विशाल मूर्त्ति को उसने चौरासी हजार प्रस्थं (सेर) कांसे से बनवाया था। एक समान लागत से उसने इन मूर्तियों के लिए उतने ही श्रेष्ठ, उतने ही विशाल और उतने ही सुन्दर चैत्य (बौद्ध मठ) बनवाये थे। कुबेर के समान धनाढ्य राजा ललितादित्य ने उपर्युक्त प्रत्येक मुख्य देव प्रतिमा के दोनों बगल स्वर्ण तथा चाँदी से बनी उनके पार्षदों की मूर्तियाँ भी स्थापित की थीं। उन मन्दिरों की सेवा–पूजा के लिए उसने असंख्य रत्न, गाँव और सेवक प्रदान किये थे।

इसी तरह उस राजा की रानियों, मन्त्रियों तथा मांडलिक राजाओं ने भी सैकड़ों ऐसे मन्दिर बनवाये थे, जिन्हें समस्त भुवन मण्डल में अद्भुत कहा जा सकता था। उस राजा की रानी कमलावती ने कमलाहट्ट नाम का बाजार बसाया और उसमें कमलाकेशव की एक विशाल रजतमयी प्रतिमा बनवा कर स्थापित की। उसके मुख्यमन्त्री मित्र शर्मा ने मित्रेश्वर नाम की शिवमूर्त्ति स्थापित की और लाट देश के मांडलिक राजा कय्य ने कय्य स्वामी की स्थापना की। उसने एक कय्य विहार भी बनवाया था, जिसमें जिन भगवान् के समान तेजस्वी एवं सर्वज्ञ मित्र नाम का भिक्षु रहा करता था।

तुःखार निवासी चिंकुण नाम के मंत्री ने चिंकुणविहार बनवाया और उसमें राजा ललितादित्य के चित्ततुल्य उन्नत एक स्तूप का निर्माण कराके जिन (जैन तीर्थंकरों) की अनेक स्वर्णमयी मूर्तियाँ स्थापित कीं। उसकी दूसरी पत्नी ईशान देवी ने एक ऐसा उत्तम कुण्ड खुदवाया, जिसमें सदा साफ और अमृत के समान मीठा जल भरा रहता था और उस जल से विविध रोगों वाले रोगी निरोग हो जाते थे। राजा की तीसरी पत्नी चक्रमर्दिका देवी ने चक्रपुर नगर बसाया। उस नगर में सात हजार घर थे। आचार्य भप्पट ने भप्पटेश्वर शिव की स्थापना की। इसी प्रकार अन्यान्य सज्जनों ने रक्छटेश आदि देवताओं के मन्दिर बनवाये। मन्त्री चिंकुण ने एक अन्य नगर में भी चैत्य और विहार का निर्माण करके अपनी उदारता दिखायी। चिंकुण के साले ईशान चन्द्र वैद्य ने तक्षक नाग की कृपा से

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सम्पत्ति प्राप्त करके उसी से एक बहुत ही सुन्दर तथा विशाल विहार बनवाया। इस प्रकार अपने सारे साम्राज्य को स्वर्णमय तथा वैभव सम्पन्न बनाते हुए राजा ललितादित्य ने उदारता और वीरता आदि सद्गुणों से इन्द्र को भी एक प्रकार से नीचा दिखा दिया।

एक दिन अश्व–शास्त्र में निपुण वह राजा एक अशिक्षित घोड़े को सिधाने के लिए वन में अकेला ही चला गया। उस निर्जन वन में उसने दूर से एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री को गाते तथा दूसरी को नाचते देखा। घोड़ा सिधाते समय राजा ने देखा कि कुछ देर बाद उन मृगनयनी ललनाओं ने अपना नृत्य व गीत समाप्त कर उस स्थान को प्रणाम किया और चली गयीं। यह देख राजा का कौतुहल बढ़ा। वह नित्य ही उस घोड़े पर सवार होकर वहाँ आने लगा। वह सुन्दरियाँ भी वहाँ नित्य आतीं और नृत्यादि के पश्चात् उस स्थान को प्रणाम करके चली जातीं। एक दिन घोड़े से उतर कर राजा ने उन दोनों का परिचय पूछा। सुन्दरियों ने कहा, "नृत्य–संगीत की जीविका पर जीवन–निर्वाह करने वाली अपनी माताओं के उपदेशानुसार हमारे कुल की नर्तकियाँ यहाँ नाचती हैं। हम देवदासियाँ हैं और यहाँ से कुछ ही दूर शूरवर्धमान गाँव में रहती हैं। हमारे घराने में यह प्रथा परम्परा से चली आ रही है। ऐसा क्यों है, इसका कारण हमें या यूँ कह लीजिए, किसी को मालूम नहीं।"

उनकी बात सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। दूसरे ही दिन उसने मजदूरों द्वारा वह भूमि खुदवा डाली, जहाँ उन नर्तकियों ने नमन किया था। काफी नीचे तक खोदकर जब वह मिट्टी हटाई गयी तो उसके भीतर से अत्यन्त जीर्ण दो प्राचीन मन्दिर मिले। उन दोनों का द्वार बन्द था। द्वार खोलकर राजा अन्दर गया तो वहाँ उसने केशवस्वामी (विष्णु) की दो मूर्त्तियाँ देखीं। उनके सिंहासन पर उत्कीर्ण अक्षरों से ज्ञात हुआ कि श्रीराम और लक्ष्मण ने उन्हें स्थापित किया था। तदनन्तर राजा ललितादित्य ने परिहासपुर में हरि मन्दिर के पास एक अलग प्रस्तरमय देवालय बनवाकर उसमें राम स्वामी की प्रतिष्ठा की। इसी तरह उस राजा की पत्नी चक्रमर्दिका देवी ने राजा से प्रार्थना करके लक्ष्मण स्वामी की मूर्त्ति प्राप्त की और चक्रेश्वर के पास एक नवीन मन्दिर बनवाकर उस मूर्ति की स्थापना की।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

ललितादित्य के देवस्थान निर्माण–कार्यों से स्पष्ट है कि धार्मिक दृष्टि से उसने अपने समय के वैष्णव, शैव, बौद्ध तथा जैन आदि सभी सम्प्रदायों को समान रूप से समादृत किया। स्वयं वैष्णव मतानुयायी होते हुए भी उसने कहीं भगवान् शिव की पूजा–अर्चना को भी सम्मान दिया तो कहीं सूर्य भगवान् की स्थापना की। अनन्तनाग से ५ मील के फासले पर मिलने वाले सुप्रसिद्ध मार्त्तण्ड मन्दिर के अवशेष उस मन्दिर की निर्माण कला की भव्यता को प्रमाणित करते हैं। ललितादित्य ने अनेक स्थानों पर भगवान् बुद्ध की सुन्दर मूर्त्तियाँ भी स्थापित करवायीं और अनेक जगह जैन तीर्थंकरों की भव्य प्रतिमाओं को भी विराजमान कर हिन्दुत्व के समन्वयात्मक स्वरूप को प्रतिपादित किया।

ललितादित्य के राज्यकाल में भवन निर्माण कला ने भव्यता की ऊँचाइयों को स्पर्श किया। उस समय के निर्मित मन्दिर, विहार आदि निर्माण कला की श्रेष्ठता को प्रकटित करते हैं। ललितादित्य की राजधानी परिहासपुर, जो अब शादीपुर के निकट परसपुर के नाम से प्रसिद्ध है, भव्य निर्माण कला का जीता–जागता उदाहरण है।

## दान की महिमा

सम्राट् के वर्चस्व का वर्णन करते हुए कल्हण कहता है कि यदि खिलवाड़ में भी उसके मुँह से कोई आज्ञा निकल जाती थी तो देवता तक उसका उल्लंघन नहीं कर पाते थे। एक बार ललितादित्य अपनी सेना के साथ पूर्वी समुद्र के तट पर टिका हुआ था। सहसा उसने अपने सेवकों को कपित्थ फल (चैरी) लाने की आज्ञा दी। यह आज्ञा सुन कर वहाँ इस फल की प्राप्ति असम्भव समझकर सभी राजसेवक किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गये। उसी समय कपित्थ फल लिए हुए एक दिव्य पुरुष राजा के सामने आ उपस्थित हुआ। राजा के इशारे पर एक सेवक ने उन फलों को ले लिया और उस पुरुष से पूछा, "आप कहाँ से आये हैं और किसके सेवक हैं ?"

उस पुरुष ने उत्तर दिया, "मैं नन्दनवन (स्वर्ग में इन्द्र देवता का उद्यान) का रक्षक हूँ और देवराज इन्द्र ने राजा ललितादित्य के लिए उनके प्रिय कपित्थ फल देने के लिए मुझे यहाँ भेजा है। मुझे एकान्त में देवराज का एक सन्देश भी

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

महाराज को सुनाना है।" यह सुनकर प्रतिहारी ने तत्काल सब लोगों को वहाँ से हटाकर राजसभा में एकान्त बना दिया। तब उस दिव्य पुरुष ने राजा से कहा, "राजन्! देवराज इन्द्र का कहना है कि मैं आपसे आपके हित की एक बात कहूँ। सम्भव है, उसमें कुछ निष्ठुरता का पुट हो, फिर भी वह पथ्यकारिणी है। इसलिए क्षमा कर दीजिएगा। हे महाराज, इस कलियुग में भी हम दिक्पाल लोग जो आपकी आज्ञा का पालन करते हैं, उसका कारण सुनिये। पूर्वजन्म में आप एक अत्यन्त धनाढ्य किसान के यहाँ हल चलाने की नौकरी करते थे। एक बार गरमी के दिनों में आप एक निर्जन वन में खेत जोत रहे थे। दिन भर बैलों को हाँकते हुए आप बहुत थक गये और तभी शाम हो गयी। उसी समय आपके स्वामी का एक सेवक पानी की कुप्पी तथा कुछ पुए लेकर थके हुए आप के पास पहुँचा। हाथ–पैर धोकर जब आप भोजन करने को उद्यत हुए तो उसी समय भूख के कारण मरणासन्न एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में आ गया। उसने कहा, 'महानुभाव, भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। मैं दुर्भिक्ष का मारा हुआ हूँ। अतएव आप कुछ अन्न स्वयं न खाकर मुझे दे दीजिए।' उस समय अपने पास खड़े सेवक के रोकने पर भी आपने मीठी बातें करते हुए अपना आधा भोजन और पानी उस भूखे–प्यासे ब्राह्मण को दे दिया। समुचित समय पर आपने प्रसन्नतापूर्वक उस सत्पात्र को जो अन्नदान किया था, उस पुण्य के प्रभाव से आपकी सौ आज्ञाएँ अखंडित रूप से मानने का हम स्वर्गवासी देवताओं ने निश्चय किया था। उसको आपने जो जल दिया था, उस पुण्य के प्रभाव से मरुभूमि में भी आप की इच्छानुसार सुस्वादु जल से भरी नदियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। सुपात्र रूपी उत्तम क्षेत्र में रोपा गया, मधुर भाषण एवं निर्मल अन्तःकरण की प्रसन्नता रूपी जल से सिंचित एक छोटा–सा दान रूपी बीज समय आने पर दाता को इच्छित फल देकर कल्पवृक्ष आदि बड़े–बड़े दानियों को भी तुच्छ बना देता है।

"अतः हे राजन्! आप की आज्ञाओं का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, किन्तु अब उन की संख्या सीमित रह गयी है। अब तक आपने अविचारपूर्वक उन आज्ञाओं का उपयोग किया है। इसलिए अब उनकी संख्या बहुत कम बाकी रह गयी है। आप जैसे विचार–सम्पन्न राजा के मन में साधारण राजाओं के

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

समान विवेकहीन भावनाएँ क्यों पैदा होती हैं ? महाराज, जो फल आपने माँगा,? वह कपित्थ फल कश्मीर में भी वर्षा ऋतु में ही कुछ ही समय तक मिलता है, तब इस शिशिर ऋतु में इस पूर्वी समुद्र के तट पर यह फल कैसे मिल सकता है ?

"पूर्वकाल में किये हुए आपके दान के प्रभाव से आप जिस किसी भी दिशा में जायेंगे, उस दिशा के दिक्पाल को आप की आज्ञा का पालन करना पड़ेगा। इस समय पूर्व दिशा में आये हुए आप की इस तुच्छ आज्ञा का पालन सर्वशक्तिमान देवेन्द्र ने स्वयं किया है। अतएव अब आप बिना किसी विशेष प्रयोजन के, अपनी आज्ञा का दुरुपयोग न करियेगा, क्योंकि वे अब बहुत थोड़ी रह गयी हैं।"

इतना कहकर जब वह पुरुष अन्तर्धान हो गया, तब उस उदारहृदय राजा ललितादित्य को दान की महिमा जानकर बहुत विस्मय हुआ। तदनन्तर दान के द्वारा अनन्त पुण्य संचित करने के लिए उसने उसी दिन से परिहासपुर में पर्व सम्बन्धी कई दिनों का एक बहुत बड़ा वार्षिक उत्सव आरम्भ कर दिया। उस उत्सव में ब्राह्मणों को प्रतिदिन चावलभरी तथा दक्षिणायुक्त एक लाख एक पत्तलें दान दी जाती थीं। उस उत्सव का नाम था– सहस्त्रभक्त। इसी अभिप्राय से उसने बंजर प्रदेशों में भी नगर बसा दिये कि यदि वहाँ कोई प्यासा प्राणी पहुँचे तो उसे पीने के लिए शीतल पानी सहज ही मिल सके।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १५. विद्वानों-गुणवानों का सम्मान

जैसे वायु विभिन्न वृक्षों के खिले हुए पुष्पों की सुगन्ध का संग्रह करती है, उसी प्रकार उस गुणग्राही राजा ने कई प्रदेशों के विद्वानों को इकट्ठा कर अपने दरबार में सम्मानपूर्ण स्थान दिया। इनमें वाक्पति राज तथा भवभूति जैसे उच्च कोटि के कवि भी शामिल थे।

राजकवि वाक्पति ने अपने पूर्व संरक्षक, कन्नौज के राजा यशोवर्मन के विजय–अभियानों का यशोगान करते हुए प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी, जो उस राजा के जीवन और शासनकाल के बारे में जानकारी का मुख्य स्रोत है। उसके इस काव्य का नाम "गौड़–वहो (गौड़–वध)" है। जैन उपाख्यानों के अनुसार, वाक्पति कन्नौज के राजा यशोवर्मन के आश्रय में आने से पहले गौड़ नरेश की सेवा में था। कहा जाता है कि अपने जीवन के सांध्य–काल में उसने जैन मत स्वीकार कर लिया था और मथुरा में कठोर तपस्या करते हुए स्वेच्छापूर्वक जैन परम्परा के अनुसार अनशन रख सद्मृत्यु का वरण किया था। गौड़–वहो की रचना से पहले वाक्पति ने 'महु–महा–व्याय (मधु–मठ–विजय) शीर्षक की कविता लिखी, जिसे वह अपनी श्रेष्ठतम रचना मानता था। इसमें विष्णु के हाथों मधु राक्षस की मृत्यु का वर्णन था।

भवभूति नाटक के क्षेत्र में कालिदास के उत्तराधिकारियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसके तीन नाटकों में से दो 'महावीर चरित' व 'उत्तर राम चरित' रामायण की कथा पर आधारित हैं और तीसरा 'मालती माधव' एक सामाजिक नाटक है। 'महावीर चरित' में श्री राम के प्रारम्भिक जीवन का चित्रण किया गया है। वहाँ राम एक वीर योद्धा के रूप में हैं जबकि 'उत्तर राम चरित' में, जो उसका अन्तिम नाटक था, रामायण के उत्तर काण्ड की कथा का वर्णन है।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

'मालती माधव' में माधव और मालती के प्रेम का, उसके विभिन्न विकास–चरणों में वर्णन किया गया है। इसमें जिस प्रेम का चित्रण किया गया है, वह शारीरिक की अपेक्षा आध्यात्मिक अधिक है।

यद्यपि भाषा के लालित्य और सौष्ठव, प्रसाद गुण और प्राञ्जलता में कवि कालिदास अद्वितीय हैं, लेकिन भाव–अभिव्यंजना, विशेषकर करुण रस की अभिव्यक्ति में भवभूति उनसे बढ़कर हैं। करुण रस के चित्रण में उस तक कोई लेखक नहीं पहुँच सका।

ललितादित्य ने भुःखार देश के महान रस शास्त्री कंकणवर्ष के अतिशय गुणवान सगे भाई चंकुण को बुलवा कर अपने यहाँ रखा था। यह रस–शास्त्री रासायनिक प्रयोगों के द्वारा सोना बना कर राजकोष को सदा स्वर्ण सम्पन्न बनाये रखता था। कमल के लिए जैसे सरोवर समर्थ माध्यम होता है, उसी तरह यह व्यक्ति राजा के लिए उपयोगी था। एक बार अपनी सेना समेत राजा ललितादित्य पंजाब की दुस्तर नदियों के संगम पर रुक जाने के लिए विवश होने से बहुत चिंतित हुआ। राजा अपने मन्त्रियों से पार जाने का कोई उपाय पूछ रहा था। उसी समय चंकुण ने नदी के अथाह जल में एक मणि डाल दी। उस मणि के जादुई प्रभाव से नदी का जल दो भागों में बँट गया, जिससे सेना समेत राजा ललितादित्य शीघ्र ही नदी पार कर गया। तदनन्तर चंकुण ने एक दूसरी मणि के प्रभाव से पहले वाणी मणि भी पानी से निकाल ली। उस मणि के निकलते ही क्षणमात्र में नदी का जल फिर पहले की तरह हो गया। उन दोनों मणियों की अद्भुत महिमा देखकर राजा ने उनकी प्रशंसा की और उन्हें चंकुण से माँगने लगा। तब चंकुण ने हँसकर कहा, "राजन्, मेरे हाथ में रहने पर ही ये मणियाँ काम करती हैं। तब आप इनको लेकर क्या करियेगा ? फिर, किसी उत्तम वस्तु को विशिष्ट योग्यता उसी समय तक प्राप्त होती है, जब तक वह साधारण वस्तुओं में रहती है। इसके उलट जहाँ पहले ही अगणित उत्तम वस्तुएँ विद्यमान हों, वहाँ उसका क्या महत्त्व होगा ?"

इतना कहकर जब चंकुण चुप हो गया, तो मुस्कुराते हुए राजा ने कहा, "तो क्या आप समझते हैं कि मेरे पास इससे भी उत्कृष्ट वस्तुएँ हैं ? यदि आप इनसे भी उत्तम कोई वस्तु मेरे पास देखते हों, तो उसे लेकर इन दोनों मणियों

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

को उसके बदले में मुझे दे दीजिए।" यह सुनकर चंकुण ने कहा, "महाराज, तब तो मेरे ऊपर श्रीमान की बड़ी कृपा है। ये दोनों मणियाँ तथा उनकी प्रयोगविधि मैं आपको सादर समर्पित कर रहा हूँ। अब इनके बदले में मेरी अभीष्ट वस्तु आप मुझे देने की कृपा कीजिए। स्वामी, आप के पास मगध देश से हाथी पर रखकर सुगत भगवान की जो मूर्त्ति आई हुई है, उसे आप मुझे दे दीजिए। इस प्रकार जल संतरण के साधन स्वरूप इन मणियों को लेकर संसाररूपी सागर को पार करने का साधन यह मूर्त्ति मुझे प्रदान कर दीजिए।"

चंकुण की युक्तिसंगत प्रार्थना से प्रसन्न होकर राजा ने उसे वह जिन प्रतिमा दे दी। गेरुए रंग की वह चमकीली प्रतिमा लेकर चंकुण ने उसे अपने विहार में स्थापित कर स्वयं को गौरवान्वित तथा सौभाग्यवान अनुभव किया।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १६. मरुभूमि से फूटी स्वच्छ जलधार

एक बार राजा ललितादित्य हाथी पर सवार होकर दिग्विजय के लिए जा रहा था कि एक पुरुष उसके आगे आ गिरा। उसे देखने से ज्ञात होता था कि वह कोई दण्डित व्यक्ति है। उसके हाथों, नाक आदि अंगों से खून बह रहा था और वह रक्षा के लिए बार–बार प्रार्थना कर रहा था। उसकी ऐसी दुर्दशा देखकर दयालु राजा ने उसका वृत्तान्त पूछा। तब उसने अपने आपको सिकता–सिन्धु (रेत का समुद्र; सम्भवतः गोबी का रेगिस्तान) के निकट के एक राजा का हितकारी एवं विश्वस्त मन्त्री बताया। साथ ही यह भी कहा, "महाराज, मैंने अपने राजा से कहा था कि 'आप राजा ललितादित्य के शरणागत हो जाइए।' मेरे यह कल्याणकारी वचन कहने पर मेरे नाक–कान आदि अंग काट कर उसने मुझे इस तरह दण्डित किया है।"

यह सुनकर राजा ललितादित्य ने उसके स्वामी को दण्ड देने की प्रतिज्ञा की और अपने वैद्यों द्वारा चिकित्सा करवा कर थोड़े ही समय में उसे अच्छा करा दिया। बाद में उसे साथ लेकर राजा अपनी सेना सहित जब आगे बढ़ा तो एक दिन एकान्त में उस व्यक्ति ने कहा, "राजन्, उस दुष्ट राजा से बदला लेने के लिए ही मैंने अपने इस अधम शरीर को जीवित रखा है। अब उस कार्य में विलम्ब होने से मेरी आत्मा अधीर हो रही है। इस कार्य के पूर्ण होते ही मैं सुख तथा दुःख दोनों को अपने आँसुओं की जलांजलि देकर अपनी यह अपमानित देह त्याग दूँगा। जैसे पर्वत पर खड़े होकर चिल्लाने वाले व्यक्ति को पर्वत प्रतिध्वनि के रूप में उस चिल्लाहट का उत्तर देता है, उसी तरह शत्रु के द्वारा किये छोटे से अपकार का बदला बहुत बड़ी हानि पहुँचा कर लेना चाहिए। महाराज, मेरे शत्रु के राज्य में पहुँचने के लिए यहाँ से तीन महीने का रास्ता है,

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

तब हम वहाँ शीघ्र कैसे पहुँच सकते हैं ? इतने दिनों में पहुँचेंगे भी, तो वह उस स्थान से कहीं और चला जायेगा। अतः मैं पन्द्रह दिनों में वहाँ पहुँचने का रास्ता बताता हूँ। किन्तु उस रास्ते पर जल नहीं मिलता। इसलिए जल साथ लेकर ही उस मार्ग पर चलना ठीक होगा। उस मार्ग पर मेरे बन्धु–बाँधव रहते हैं। वे आपके आगमन का समाचार उसे मालूम नहीं होने देंगे। इससे आप आकस्मिक आक्रमण करके मन्त्रियों, रानियों तथा कोश आदि के साथ उस राजा को अनायास ही गिरफ्तार कर सकेंगे।"

ऐसा कहकर वह सचिव सेना समेत राजा ललितादित्य को रेगिस्तान के मार्ग से ले चला। एक पखवाड़ा पूरा होते–होते सेना के पास का जल समाप्त हो गया। फिर भी राजा बिना जल के ही दो–तीन दिन बराबर चलता रहा। तब सेना को प्यास से दुःखी देखकर राजा ने उस सचिव से कहा, "महानुभाव, आप ने जितना समय बताया था, हम लोग उससे बहुत ज्यादा दिन चल चुके हैं। हमारे सैनिक प्यास से तड़प रहे हैं। अब कितना रास्ता बाकी है ?"

तब उस सचिव ने हँसकर कहा, "हे विजयेच्छु राजन्, आप शत्रुनगर के मार्ग की दूरी पूछ रहे हैं या यमलोक की ? वास्तविकता यह है कि अपने स्वामी का कल्याण करने के लिए निजी प्राणों की कुछ भी चिन्ता न करके युक्तिपूर्वक मैंने सेना सहित आपको काल के गाल में पहुँचा दिया है। हे राजन्, यह केवल मरुभूमि ही नहीं है, बल्कि बड़ा भीषण रेत का समुद्र है। यहाँ जल की एक बूँद का भी मिलना असम्भव है। अब मृत्यु से आपको कौन बचायेगा ?"

यह कर्णकटु वचन सुनकर राजा ललितादित्य की सारी सेना उसी तरह उदास हो गयी, जैसे ओले गिरने से धान के पौधों का सारा दाना झर जाये और केवल सूखे डंठल खड़े रह जायें। तदनन्तर जीवन से निराश सैनिकों का करुण क्रन्दन सुनकर राजा ललितादित्य ने भुजा उठाकर सेना को सांत्वना दी और उस व्यक्ति से कहा, "महाशय, स्वामि–भक्ति से प्रेरित होकर आपने यह कार्य किया है। इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हर्ष के कारण इस मरुभूमि में भी शीत से आर्त्त होने की तरह मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं। किन्तु मुझ जैसे दुर्जेय पुरुष पर प्रयुक्त आपका यह प्रयास उसी तरह व्यर्थ है, जैसे वज्र पर किया हुआ लौहप्रहार निष्फल हो जाता है। मणि के भ्रम से आग का कण उठा लेने वाले

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

मूर्ख मनुष्य की उँगलियाँ जब जल जाती हैं, तब उसे अपनी करनी पर पछतावा होता है। उसी तरह अब आपको भी व्यर्थ अपने अंग कटवाकर पछताना पड़ेगा और अभी इस मरुभूमि में भी जल निकलता हुआ आप देखेंगे।"

ऐसा कहकर राजा ललितादित्य ने जल निकालने के लिए अपने इष्टदेव का स्मरण कर भाले से उसी प्रकार पृथ्वी पर जोर का आघात किया जैसे किसी वितस्ता नदी के जल को बढ़ाने के लिए शंकर जी ने अपने त्रिशूल से प्रहार किया था। उसके ऐसा करने पर सैनिकों के जीवन की आशा जग उठी। रसातल से, पाताल–लक्ष्मी की मधुर मुस्कान की तरह स्वच्छ जल की धार फूट पड़ी और देखते ही देखते वहाँ लबालब भरी नदी बहने लगी। उस नदी ने उस राजा की सेना के दैन्य के साथ ही उस नाक–कान कटवाये धूर्त सचिव की अभिलाषाओं का भी मूलोच्छेद कर दिया। इस प्रकार अपना प्रयास निष्फल होता देखकर वह नकटा अपने राजा के पास भाग गया। अपशकुन के मूर्तरूप उस नकटे मंत्री के वहाँ पहुँचते ही उसके पीछे–पीछे ललितादित्य रूपी यमराज भी उस नगरी में प्रविष्ट हो गया। वहाँ पहुँच कर ललितादित्य ने उस कुटिल राजा को पकड़ लिया और उसकी भी वैसी ही दुरावस्था कर दी जैसी उस मिथ्यावादी मन्त्री की थी अर्थात् उसके भी नाक–कान काट लिये गये। महाकवि कल्हण के अनुसार, महाराजा ललितादित्य नें अपने उपयोग के लिए मार्ग में जिन–जिन नदियों को अपने भाले द्वारा उत्पन्न किया था, वे आज भी उत्तरापथ में उसी तरह प्रवाहित हैं।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १७. कलि का प्रभाव या सत्ता मद ?

शान्त रूप से बहने वाली बड़ी–बड़ी नदियाँ भी पत्थरों की चट्टानों पर गिरकर भयंकर कोलाहल करने लगती हैं और स्वच्छसलिला होती हुई भी वे बरसात में कलुषितजला बन जाती हैं। इसी प्रकार उच्च कुल में उत्पन्न बड़े–बड़े लोग भी दिशा तथा देशकाल की परिस्थिति से प्रभावित हो अपने आचार–व्यवहार में परिवर्तन कर बैठते हैं। महाकवि कल्हण यहाँ एक प्रश्न उपस्थित करता है कि ऐसी स्थिति को कलियुग का प्रभाव कहा जाये या कि राजसिंहासन एवं सत्ता मद का असर, जिसके कारण ललितादित्य जैसा सुयोग्य राजा भी कभी–कभी बड़े निन्दनीय कार्य कर गुजरता था।

एक दिन परिहासपुर में अपनी रानियों के साथ बैठे हुए मदिरा पीकर तथा उन्मत्त होकर उसने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि 'राजा प्रवरसेन का बसाया हुआ नगर मेरे परिहासपुर से अधिक सुन्दर लगता है। आग लगाकर जला डालो उसे।' यह जानते हुए भी कि राजा इस समय नशे में है, मंत्रीगण उसकी इस भीषण आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते थे और प्रवरपुर को जलाकर वहाँ के निर्दोष नागरिकों पर वृथा ही कहर भी नहीं ढाना चाहते थे। आखिर, इस समय प्रवरपुर था तो ललितादित्य के अपने राज्य का ही एक हिस्सा। अतः प्रवरपुर के निकटवर्ती वातुलानक नामक स्थान पर जाकर उन्होंने घोड़ों के चारे के लिए एकत्रित घास के भारी ढेरों में आग लगा दी। राजमहल की छत से उस दृश्य को देखकर राजा अट्टहास करता हुआ हँसने लगा। अग्नि की उन भयानक लपटों के प्रकाश में उसका मुख टूटते हुए उज्जवल तारे जैसा चमक रहा था। जैसे तिमिरदोष से दूषित नेत्र चन्द्रमा आदि तेजस्वी पदार्थों को दुगुना देखते हैं, इसी प्रकार राग–द्वेष के वशीभूत होकर भले लोग भी मानव मात्र को विपरीत दृष्टि से देखने लगते हैं। यदि ऐसा न होता तो अनेकानेक

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

सुन्दर नगर बसाने वाला राजा ललितादित्य राजा प्रवरसेन के बसाये उस एकमात्र नगर को अधिक अच्छा क्यों मान लेता?

बाद में जब मदिरा का नशा उतर गया, तब वह राजा नगरदाह के अपने महान् अपराध को सोचकर बहुत दुःखी हुआ। तीव्र पश्चाताप के कारण उसके दीर्घ एवं उष्ण निःश्वास निकलने लगे। जैसे पुराने वृक्ष के कोटर में उत्पन्न अग्नि सारे वृक्ष को जला डालती है, उसी तरह अन्तःकरण में उत्पन्न क्लेश मनुष्य को क्षीण कर देता है। प्रातःकाल होने पर जब मंत्रियों ने राजा की यह शोचनीय स्थिति देखी तो उसे रात का सच्चा वृत्तान्त बताकर शान्त किया। जब राजा को यह पता चला कि प्रवरपुर जलकर नष्ट नहीं हुआ है, तब वह उसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्न हुआ, जैसे स्वप्न में किसी का पुत्र खो जाए और इससे वह दुःखी हो किन्तु जागने पर उसका बेटा उसे अपनी आँखों के सामने खड़ा दिखाई दे और वह आनन्दित हो उठे। उसी समय उसने मन्त्रियों के कार्य की सराहना की तथा यह आदेश जारी किया कि 'मदिरा के नशे में यदि मैं कोई अनुचित आज्ञा दे दूँ तो उसका पालन कदापि न किया जाए।' बहुतेरे राजसेवक अपना स्वार्थ साधन करने तथा सुख–प्राप्ति के लिए इस पृथिवी का थोड़े समय उपभोग करने वाले स्वामी को अनुचित व्यसनों में फँसाकर उसे पतित बना देते हैं। ऐसे नीच पुरुषों को धिक्कार है। इसके विपरीत जो अपने जीवन की उपेक्षा करके स्वामी को कुमार्ग से रोकते हैं, ऐसे ही विवेकवान सेवकों के पुण्य–प्रताप से यह पृथ्वी पुनीत मानी जाती है।

देवराज इन्द्र से भी अधिक प्रभावशाली राजा ललितादित्य द्वारा एक और भी ऐसा अनुचित कार्य हो गया था, जिसे करके कोई क्षुद्र प्रकृति का राजा भी लज्जित ही होता। एक बार उसने भगवान् परिहासकेशव को मध्यस्थ बनाकर गौड़ प्रदेश के नरेश को अभयदान दिया किन्तु बाद में उसने तीक्ष्ण नाम के पातकी पुरुषों द्वारा त्रिगामी में उसका वध करा दिया। इस पर उस गौड़ प्रदेश के राजा के सेवकों ने अपने मृत राजा के लिए बड़े धैर्य के साथ युद्ध करके अपने प्राणों की बाजी लगा दी। ऐसा करके उन्होंने सबको चकित कर दिया। वे लोग शारदा देवी के दर्शन करने के बहाने से कश्मीर में घुस गये और राजधानी के मध्य में स्थित परिहासकेशव, जिसको मध्यस्थ मानकर गौड़ नरेश की सुरक्षा का आश्वासन दिया गया था, के मन्दिर को चारों ओर से घेर लिया। उस समय

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

राजा ललितादितय विदेश में था। अतः उपद्रव करने के लिए घुसते हुए गौड़ राजसेवकों को देखकर पुजारियों ने द्वार बन्द कर दिये तथा इस तरह परिहासकेशव की प्रतिमा की रक्षा हो गयी। किन्तु वे पराक्रमी वीर परिहासकेशव के भ्रम में राम स्वामी के मन्दिर पर चढ़ गये और वहाँ की रजतमयी प्रतिमा को तोड़–फोड़ कर नष्ट कर दिया। उस मूर्ति को तिल–तिल करके उन्होंने चारों ओर छितरा दिया। तब उनके इस महान् अपराध से कुपित होकर राज्य के सैनिक उनका वध करने लगे।

उस समय रक्त से नहाये हुए वे काले–काले गौड़ेन्द्र सेवक, गेरू से रंगे हुए सुरमे के पर्वत के शिलाखण्डों जैसे दिखाई दे रहे थे। उन वीरों के रक्त प्रवाह से धरती तथा उनकी अनुपम स्वामिभक्ति, दोनों ही का मुख उज्ज्वल हो गया और वे दोनों धन्य हो गयीं। हीरे (DIAMOND) से बिजली गिरने का भय दूर हो जाता है, पद्मराग मणि (RUBY) से लक्ष्मी की वृद्धि होती है और गारुत्मत (EMERALD) रत्न से विष की बाधा नहीं रह जाती। इस प्रकार सभी रत्न अपने नियमित प्रभाव के अनुसार एक–एक प्रकार का लाभ पहुँचाते हैं, किन्तु अपरिमित महिमावान पुरुष रूपी रत्न अपने प्रभाव से कौन–कौन सा काम नहीं कर गुजरते ? उन गौड़सेवकों का राजा मारा जा चुका था और बंगाल से कश्मीर तक पहुँचने के लिए उन्हें काफी लम्बा रास्ता भी तय करना था। ऐसी भीषण परिस्थितियों में भी उन्होंने स्वामिभक्ति का जो अनूठा आदर्श उपस्थित किया, ऐसा उदाहरण पेश करना किसी वीरशिरोमणि के लिए भी असाध्य ही है। उन दिनों राजाओं के यहाँ इसी प्रकार की लोकोत्तर स्वामिभक्ति को प्रकट करने वाले समर्पित सेवक रहा करते थे। इस प्रकार उन गौड़सेवकों के उपद्रव में रामस्वामी के पुनीत बलिदान से राजा के परम प्रिय भगवान् परिहासकेशव की रक्षा हुई। अब भी कश्मीर में रामस्वामी का भग्न मन्दिर वैभवहीन तथा सूने खण्डहर जैसा दिखाई देता है और उन गौड़ वीरों के सुयश से समस्त ब्रह्माण्ड आलोकित हो रहा है।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १८. चलते रहो, चलते रहो

सम्राट् ललितादित्य का अधिक समय विजय–अभियानों की यात्रा में और बहुत थोड़ा समय राज्य में व्यतीत होता था। जिन प्रदेशों को अन्य राजागण अभी तक देख भी नहीं पाये थे, उन्हें विजय करने के लिए वह सम्राट् पुनः अपनी सेना के साथ अपार उत्तरापथ में प्रविष्ट हुआ। उस समय उसके प्रभाव की परीक्षा करने के लिए कुबेर आदि दिक्पालों ने बहुतेरे रणकुशल राक्षसों को मार्ग में युद्ध करने के लिए भेजा और उस वीर सम्राट् ने उन सबको परास्त कर दिया। अब तक जिस भूमि को सूर्य की किरणों ने भी नहीं देखा था, वहाँ पर भी सम्राट् ललितादित्य की आज्ञा स्वच्छन्द रूप से विचरती थी। वह सेना सहित और आगे बढ़ा, बढ़ता चला गया। उसने वर्तमान चीन के शान प्रान्त में सिंकियांग की टैरिम नदी के संग्रहण क्षेत्र (TARIM BASIN) पर आक्रमण किया, तकलामकान (TAQLAMAQAN) के रेगिस्तान को पार किया, उसके भी उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम में स्थित राज्यों, क्रमशः कुचा (KUCHA) व तुरफान (TURFAN) को जीता और पुनः आगे के रेगिस्तान की ओर बढ़ गया। उसने मंगोलिया के गोबी रेगिस्तान को भी पार किया। यह भी कहा जाता है कि अन्ततः इन्हीं सुदूर दुस्तर–विकट प्रदेशों में उसका स्वर्गवास हुआ। अत्यन्त शूरवीरतापूर्वक नित–नये संघर्षों को चुनौती देना ही उसका जीवन था, जीवन–सार था।

सम्राट् के मन्त्रियों को काफी समय तक उसका कोई समाचार नहीं मिला था। अतएव आकुल होकर उन्होंने उसके पास एक दूत भेजा। सम्राट् के विजय–अभियानों की जानकारी प्राप्त करता हुआ वह दूत अन्ततोगत्वा सम्राट्

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

तक पहुँच ही गया। उसने महाराजा को मन्त्रियों द्वारा चिरकाल से की जा रही प्रतीक्षा की जानकारी दी। इस पर सम्राट् ललितादित्य ने कहा, "आप लोगों का यह कैसा भ्रम है, जो आप ऐसा सोचते हैं कि इस सुदूरदेश में पहुँचकर मैं शीघ्र लौट आऊँगा। यहाँ तो मैं प्रतिदिन नये–नये देशों पर आक्रमण करके विजय पर विजय प्राप्त कर रहा हूँ। वह छोड़कर यदि मैं स्वराष्ट्र लौट भी आऊँ तो वहाँ आप लोग मेरे लिए कौन सा काम रखे हुए हैं ? अपने उद्‌गम स्थान से निकल कर आगे बढ़ने वाली नदियों के लिए तो समुद्र उनकी अन्तिम सीमा होती है, किन्तु विजयेच्छु राजाओं के लिए कोई अन्तिम सीमा नहीं होती।

"ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र द्वारा रोहित को उपदेशित पाँच श्लोकों का एक गीत आता है, जिसका अंतरा है, 'चरैवेति–चरैवेति', अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। यही मेरा ध्येय–गीत है। कहा है :–

(१)

चरैवेति–चरैवेति

**नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति इति रोहित शुश्रुम।**
**पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा।।**

चरैवेति–चरैवेति।

हे रोहित, सुनते हैं कि श्रम से जो नहीं थका, ऐसे पुरुष को लक्ष्मी नहीं मिलती। बैठे हुए आदमी को पाप धर दबाता है। इन्द्र उसी का मित्र है, जो बराबर चलता रहता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(२)

**पुष्पिण्यौ चरतो जंघे भूष्णुरात्मा फलग्राहिः।**
**शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताः।।**

चरैवेति–चरैवेति।

जो पुरुष चलता रहता है, उसकी जंघाओं में फूल खिलते हैं, उसकी आत्मा भूषित होकर फल प्राप्त करती है। चलने वाले के पाप थककर सोये रहते

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

हैं। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(३)

**आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।**
**शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः।।**

चरैवेति–चरैवेति।

बैठे हुए का सौभाग्य बैठा रहता है, खड़े होने वाले का सौभाग्य खड़ा हो जाता है, पड़े रहने वाले का सौभाग्य सोता रहता है और उठकर चलने वाले का सौभाग्य चल पड़ता है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(४)

**कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।**
**उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्।।**

चरैवेति–चरैवेति।

सोने वाले का नाम कलि है, अँगड़ाई लेने वाला द्वापर है, उठकर खड़ा होने वाला त्रेता है और चलने वाला सतयुगी है। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

(५)

**चरन्व मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।**
**सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्।।**

चरैवेति–चरैवेति।

चलता हुआ मनुष्य ही मधु पाता है, चलता हुआ ही स्वादिष्ट फल चखता है। सूर्य का परिश्रम देखो, जो नित्य चलता हुआ कभी आलस्य नहीं करता। इसलिए चलते रहो, चलते रहो।"

विजयमार्गी सम्राट् ने पुनः कहा, "अब मैं अपने वंशजों के विषय में कुछ कहूँगा, उसे ध्यान देकर सुनो। विचारवान् तथा सूक्ष्मदर्शियों को मानव का साधारण आचरण देखकर ही उसके पूर्वजन्म के संस्कार जनित स्वभाव तथा उसके सच्चे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। कुवलयादित्य तथा वज्रादित्य दोनों

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

मेंरे पुत्र हैं। किन्तु मातृभेद के कारण उन दोनों का स्वभाव भिन्न–भिन्न प्रकार का है। परम्परानुसार मेरे बड़े पुत्र को ही राज्य अधिकारी बनाया जाये। किन्तु यदि उसमें राजा के योग्य गुण सिद्ध न हों तो उसके विरुद्ध कार्यवाही करके उसे राज्य से अलग कर दें। (ध्यान देने योग्य है कि सम्राट् ने यहाँ मन्त्रिपरिषद् के इस अधिकार का वर्णन किया है कि यदि राजा सुशासन प्रदान नहीं कर सकता तो मंत्रिपरिषद् उसे हटाकर किसी दूसरे को उसके स्थान पर राजा नियुक्त कर सकती है।) ऐसा करने से यदि वह दुःखी होकर राज्य से बाहर चला जाये या प्राण दे दे तो उसके लिए कोई किसी प्रकार का शोक न करे। मेरे छोटे पुत्र वज्रादित्य को कदापि राज्य न दिया जाये। यदि भूलचूक से उसको राजा बना ही दिया जाये तो फिर उसकी आज्ञा का सदा पालन करना चाहिए और उसके प्राणों की भी रक्षा की जानी चाहिए। मेरे पौत्रों में जो सबसे छोटा पौत्र जयापीड़ है, उसको आप लोग सदा यही उपदेश देते रहें कि तुम अपने पितामह के समान वीर बनो।"



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# १६. सूर्यास्त

दूत के द्वारा प्राप्त संदेश से सभी मंत्रियों को यह विश्वास हो गया कि सम्राट् के शीघ्र लौट आने की कोई सम्भावना नहीं है। सम्राट् ने तो अपने उत्तराधिकारियों के बारे में भी अपने निर्देश भेज दिये थे। फिर भी मंत्रिमण्डल ने सम्राट् की काफी समय तक प्रतीक्षा की। आखिर निराश होकर मन ही मन सम्राट् को प्रणाम करते हुए प्रधानमंत्री मित्रशर्मा के निर्देश पर चंकुण ने एक दिन समस्त अधिकारियों और प्रजाजनों को एकत्रित कर अपने स्वामी के विछोह रूपी अग्नि से संतप्त धरती को आँसुओं से सींचते हुए कहा, "अब राजसिंहासन पर राजपुत्र कुवलयापीड़ का अभिषेक किया ही जाना चाहिए, क्योंकि दूत की बातों से मालूम होता है कि अब पुण्यात्मा महाराज ललितादित्य कभी नहीं लौटेंगे। उस धर्मात्मा की कोशवृद्धि के लिए देवताओं ने मुझे जो रससिद्धि प्रदान की थी, वह आज अकस्मात् नष्ट हो गयी है। इसका भी अर्थ स्पष्ट है कि महाराज इस असार संसार को त्याग चुके हैं। राज्य से दूर होता हुआ भी वह महापुरुष अपनी किसी अलौकिक भाग्यशक्ति से दुष्कर कार्यों को भी अनायास ही सम्पन्न कर देता था। जैसे भगवान् सूर्यनारायण बादलों से ढँक जाने पर भी कमलों को विकसित कर देते हैं और दूर रहता हुआ भी बादल गरमी को कम कर देता है, उसी प्रकार महापुरुषों में कोई ऐसी अद्भुत शक्ति अवश्य विद्यमान रहती है, जिससे दूर स्थित तथा कठिन कार्य भी बिना किसी बाधा के पूर्ण हो जाया करते हैं।"

इस प्रकार सम्राट् ललितादित्य रूपी चन्द्रमा छत्तीस वर्ष सात महीने ग्यारह दिन जगतीतल को आनन्दित करके लुप्त (७६१ ई.) हो गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि आर्याणक (ईरान) देश में सहसा असमय तथा अत्यधिक हिमपात होने के कारण वह सम्राट् उसी में दबकर लुप्त हो गया। कुछ

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

इतिहासज्ञ कहते हैं कि बहुत दिनों से संचित अपनी कीर्त्ति की रक्षा करने के लिए भविष्य में आने वाली किसी अपरिहार्य विपत्ति की आशंका से सम्राट् ने अग्नि–समाधि ले ली। कुछ ऐतिहासिकों का कथन है कि वह सम्राट् उत्तरापथ के ऐसे सुदूर क्षेत्रों में प्रवेश कर गया, जो मनुष्यों के लिए दुर्लभ हैं तथा केवल देवताओं के लिए ही सुलभ हैं और सेना सहित ही पृथ्वी में समा गया।

सम्राट् ने अपने स्वल्प शासनकाल में वह कुछ कर दिखाया था, जो भारतभूमि के अन्य अनेक शासक न कर सके थे। सम्पूर्ण भारत की जय–परिक्रमा के अतिरिक्त सम्राट् ललितादित्य ने उत्तरापथ के अनेक सुदूर व अगम्य प्रदेशों में भी हिन्दुत्व की विजयपताका फहरायी तथा विजय का डंका बजाते हुए दिग्दिगंत को अपने पराक्रमपूर्ण जय–निनाद से गुँजायमान किया। वह भारत का अन्तिम दिग्विजयी सम्राट् था। ललितादित्य मुक्तापीड़ के पश्चात् भारत माता आज तक उस जैसे महान् दिग्विजयी सपूत की प्रतीक्षा कर रही है, जो एक बार फिर राजनीतिक, रणनीतिक एवं सांस्कृतिक आदर्श स्थापित कर उसे गौरवान्वित कर सके।

जिस तरह सम्राट् ललितादित्य के विचित्र कार्यों की गाथा गायी जाती है, उसी तरह उसके देहावसान की भी कई कथाएँ कही जाती हैं। जैसे सायंकाल के समय होने वाले सूर्यास्त के विषय में कोई कहता है, "सूर्य अस्त हो गया"। कोई कहता है, "सूर्य अस्ताचल को चला गया"। कोई कहता है, "सूर्य समुद्र में डूब गया"। कोई कहता है , "सूर्य ने अग्नि में प्रवेश कर लिया"। बहुत से कहते हैं कि "सूर्य लोकान्तर को चला गया"। उसी प्रकार जब महापुरुषों का अन्तकाल होता है, तब उनके विषय में भी अनेक प्रकार की विचित्र कथाएँ प्रचलित हो जाती हैं।

अन्ततः सम्राट् ललितादित्य के पश्चात् इन्द्र के समान तेजस्वी कमलदेवी के पुत्र कुवलयापीड़ ने राजपाट सम्भाला। जैसे सर्पगण अपनी केंचुली त्याग कर तेजस्वी हो जाते हैं, उसी प्रकार उसने अपने त्याग द्वारा लक्ष्मी की मलीनता को दूर करके उसे निर्मल बना दिया। चारों दिशाओं में उसकी जय–जयकार होने लगी।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# २०. प्रतीक्षा है

पहले तो कुवलयापीड़ तथा वज्रादित्य दोनों भाइयों से अलग–अलग इनाम पाने की लालसा में कई धूर्त राज–दरबारियों ने उन दोनों में पारस्परिक ईर्ष्या को बढ़ावा देकर उन्हें ऐसी दशा में पहुँचा दिया कि जिससे दोनों भाइयों की स्थिति अस्थिर सी हो गयी। लेकिन कुछ ही समय बाद चतुर राजा कुवलयापीड़ ने उन लोभी अधिकारियों के दोनों ओर से धन प्राप्त करने का हाल जानकर उनके द्वारा रचित कुचक्र को तोड़ डाला तथा अपने भाई के प्रभाव को भी समूल नष्ट कर दिया। इस तरह अपने पराक्रम से राज्य को निष्कंटक करने के बाद उसने दिग्विजय की यात्रा के लिए सेना सुसज्जित की। उसी समय एक मन्त्री ने अपने अक्खड़पन के कारण राजा कुवलयापीड़ की आज्ञा नहीं मानी। इस अपमान से कुपित राजा रात को शय्या पर लेटा तो उसे पूरी रात नींद नहीं आयी। उसके मस्तिष्क में बराबर वह अपमान वाली बात ही चक्कर काटती रही। उसी आवेश में उसने उस मन्त्री का वध कर डालने का विचार किया। किन्तु फिर सोचा कि केवल उसी के वध से काम नहीं चलेगा। उससे सम्बन्ध रखने वाले सभी लोगों को समाप्त करना पड़ेगा।

इस प्रकार उसके हृदय रूपी सागर में विचार रूपी मन्दराचल से मन्थन करने पर पहले तो प्रतिशोध रूपी कालकूट विष निकला और उसके बाद शान्ति रूपी अमृत प्रकट हुआ। क्रोध शांत होने पर राजा कुवलयापीड़ ने सोचा कि मन्त्री–वध की इतनी कुत्सित भावना मेरे मन में क्यों उपजी ? जिस शरीर के अहम् के लिए नाना प्रकार के अनुचित कार्य करके बड़े–बड़े भयानक पापों का संग्रह किया जाता है, वह शरीर भी किसका सदा के लिए स्थिर रहा है ? ऐसी स्थिति में इस नाशवान शरीर के लिए कौन विवेकवान पुरुष अविनाशी पुण्यमार्ग

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

का विनाश करेगा ? इसी उधेड़बुन में राजा कुवलयापीड़ के विचार, संसार की अनित्यता की ओर केन्द्रीभूत होते चले गये। इस प्रकार विरक्ति के भाव को ही अपने मन में स्थान दे, राजधर्म की उपेक्षा करते हुए उसने राज्य त्याग दिया और राजमहल से निकल कर नैमिषारण्य तीर्थ में जा पहुँचा। राज्य त्यागकर चलते समय उसने अपने सिंहासन पर यह लिख दिया –

**"हे भद्र,**
**चल दो वन की ओर,**
**वहाँ पहुँच तपस्या में**
**लगाओं मन अपना।**
**सभी विभूतियाँ**
**क्योंकि इस संसार की**
**हैं विनाशशील ....**
**क्षणभंगुर"।**

राज्य त्याग कर अपने सिंहासन पर लिखित इस उद्बोधन से राजा कुवलयापीड़ ने अपने दृढ़ वैराग्य को ही सूचित किया। नैमिषारण्य में वह शान्तिपूर्वक प्रबल तपस्या कर असाधारण सिद्धि की प्राप्ति में जुट गया। उधर अपने स्वामी ललितादित्य मुक्तापीड़, जिसने अनेक स्वदेशी और विदेशी शक्तियों को अधीनस्थ कर अपनी राज्यसीमा उत्तर में कुचा, तुरफान और मंगोलिया तक पहुँचायी तथा जिसके सिंहनाद से अफगानिस्तान, तिब्बत और उनके पार के सुंदूर क्षेत्र आज भी उसे गूँजते सुनाई दे रहे थे, के पुत्र कुवलयापीड़ के इस प्रकार साम्राज्य--विमुख हो जाने से प्रधानमन्त्री मित्रशर्मा को असह्य वेदना हुई। उसे लगा कि जैसे उसकी सभी अपेक्षाओं और आकांक्षाओं पर तुषारपात् हो गया हो। उसने भी धर्मपत्नी के साथ वितस्ता तथा सिन्धु नदी के संगम पर जाकर साधना करते हुए शरीर त्याग दिया।

राजा कुवलयापीड़ ने इस प्रकार कुल एक वर्ष पन्द्रह दिन राज्य करने (७६१–७६२ ई.) के बाद मुक्तिमार्ग का आश्रय ले अपना निजी जीवन तो विरक्त

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

एवं शान्त बना लिया किन्तु राजधर्म के प्रति उसकी इस उदासीनता से महान् सम्राट् ललितादित्य द्वारा स्थापित विराट् साम्राज्य को संभालने के लिए जिस शक्तिशाली, अग्रगामी एवं सच्चरित्रता–आधारित शासन की आवश्यकता थी, उससे राष्ट्र वंचित रह गया। सम्राट् ने अपने शौर्य, बुद्धिमत्ता और कुशलता से जिस विशाल हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की थी उसे सुगठित करने के लिए सम्राट् के ही समान गुणवान, शूरवीर, विजिगीषु और महायोजक उत्तराधिकारी की राष्ट्र को जरूरत थी। किन्तु दुर्भाग्यवश इस आवश्यकता की पूर्त्ति न हो सकी। सम्राट् ललितादित्य के बाद के शासक राष्ट्र की अपेक्षाओं के अनुरूप सिद्ध न हुए।

आज भी भारतमाता को ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज के पुंजीभूत ऐसे अपने किसी सुपुत्र की प्रतीक्षा है, जिसके योग्य नेतृत्व में उसे विश्व में पुनः एक सशक्त, समादृत एवं श्रेष्ठतम गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हो सके।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# काल-क्रम

| ईस्वी सन् | घटना |
|---|---|
| (ईसापूर्व ३०५) | चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा सैल्यूकस की पराजय। |
| ३३५–३७५ | सम्राट् समुद्रगुप्त का शासनकाल। |
| ५०० | मौखरि वंश के एक सामन्त द्वारा कन्नौज पर सत्ता स्थापित। |
| ५५०–७५७ | चालुक्य काल। |
| ५५४ | ईशान वर्मन की शक्ति का आरम्भ। |
| ५६३–५६७ | तुर्कों और पारसीकों की सम्मिलित सेनाओं ने हूणों की केन्द्रीय सत्ता को ओक्सस नदी के पास करारी हार दी। |
| ५७० | गुप्त साम्राज्य का ह्रास। |
| ६०६–६४७ | महाराजा हर्षवर्द्धन का शासनकाल। |
| ६१२ | महाराजा हर्ष ने अपना हर्ष संवत् प्रारम्भ किया। |
| ६२५–६६१ | कर्कोट वंश के संस्थापक दुर्लभवर्धन का शासनकाल। |
| ६३२ | पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहिब की मृत्यु। |
| ६३४–६४४ | खलीफा उमर की खिलाफत–अवधि। |
| ६३५ | तिब्बत द्वारा चीन पर पहला हमला। |
| ६३७ | अरबों द्वारा ईरान (फारस) विजय। भारत (थाना, मुम्बई के निकट) के विरुद्ध पहला अरबी नौ–सेना अभियान। |
| ६४४ | अरबों का मकरान (बलोचिस्तान) पर कब्जा। |

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

| | |
|---|---|
| ६४७ | सम्राट् हर्ष का निधन। |
| ६५५–६८१ | चालुक्य राजवंश की वातापी (बादामी) शाखा के प्रसिद्ध शासक विक्रमादित्य प्रथम का शासनकाल। |
| ६६१–६६५ | चीन का साम्राज्य, कोरिया से ईरान तक तथा कैप्सिया (उत्तरी पूर्वी अफगानिस्तान) मिलाकर, फैला हुआ था। |
| ६६१–७११ | ललितादित्य मुक्तापीड़ के पिता दुर्लभक प्रतापादित्य का शासनकाल। |
| ६६३ | खलीफा अली के समय में किकान (सिन्ध) पर चढ़ाई। यहाँ के लोगों ने मुस्लिम सेना का समूल नाश कर दिया। |
| ६९५ | हज्जाज इराक का गवर्नर बना। |
| ७०० | यशोवर्मन कन्नौज के सिंहासन पर बैठा। |
| ७०२ | नेपाल ने तिब्बत के खिलाफ बगावत की। |
| ७०८ | लंका से इराक जाता अरबों का जहाज समुद्री डाकुओं द्वारा लूटा गया। |
| ७११–७१९ | चन्द्रापीड़ वज्रादित्य का शासनकाल। |
| ७१२ | मुहम्मद–बिन–कासिम की सिन्ध पर विजय। |
| ७१३ | अरबों द्वारा स्पेन का अधीनीकरण |
| ७१३ | चन्द्रापीड़ ने चीन के राजा के पास अपना राजदूत भेजा। |
| ७१४ | हज्जाज की मृत्यु। |
| ७१७–७२० | उमर द्वितीय का खलीफा पद। |
| ७१९ | अरब आक्रमणकारियों के साथ चीन का सफल संघर्ष। |
| ७१९–७२४ | तारापीड़ उदयादित्य का शासनकाल। |
| ७२४–७३८ | सिन्ध, राजपूताना, गुजरात और काठियावाड़ पर अरबों के हमले। |
| ७२४–७६१ | सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ का शासनकाल। |
| ७२५–७३५ | यशोवर्मन ने पूर्वी व पश्चिमी बंगाल को जीता। |

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

| | |
|---|---|
| ७२५–७३५ | नान्दीपुरी के गुर्जर वंश का अन्तिम यशस्वी राजा जयभट्ट चतुर्थ। |
| ७३०–७५६ | प्रतिहार वंश के अवन्ति (उज्जयन) नरेश नागभट्ट। |
| ७३१ | यशोवर्मन ने अपना राजदूत चीन भेजा। |
| ७३३ | सम्राट् ललितादित्य द्वारा यशोवर्मन की पराजय तथा क़न्नौज विजय। |
| ७३४ | चित्तौड़ पर बप्पा रावल का कब्जा। |
| ७३५–७५५ | राष्ट्रकूट वंश के बरार के राजा दंतिदुर्ग। |
| ७३६ | सम्राट् ललितादित्य ने अपना राजदूत चीन भेजा। |
| ७३६–७३७ | चालुक्य वंश के लाट (दक्षिण गुजरात) नरेश अवनि जनाश्रय पुलकेशिन ने अरबों को पराजित किया। |
| ७४० | यशोवर्मन ने इस अवधि तक राज्य किया। |
| ७४०–७४१ | सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ द्वारा गुजरात विजय। |
| ७६१ | सम्राट् ललितादित्य मुक्तापीड़ का देहावसान। |



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

# सन्दर्भ ग्रन्थ

## (ENGLISH)

1. **A. H. FRANCKE,** A History of Western Tibet, Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd. Delhi.

2. **C. V. VAIDYA,** History of Medieval Hindu India, Cosmo Publications, New Delhi.

3. **F. M. HUSSNAIN,** Hindu Kashmir, Light & Life Publishers, New Delhi

4. **G. M. D. SUFI,** Kashir, Light & Life Publishers, New Delhi.

5. **G. YAZDANI,** The Early History of the Deccan, Oxford University Press, London.

6. **H. E. RICHARDSON,** Tibet And its History, Oxford University Press, Toronto.

7. **H. GOETZ'S** Article published in Journal of Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, Vol. 27, 1951.

8. **H. H. WILSON,** The Hindu History of Kashmir, Susil Gupta (India) Pvt. Ltd. Calcutta.

9. **H. M. ELLIOT,** The History of India (The Mohammadan Period), Susil Gupta (India) Ltd. Calcutta.

10. **KRISHNA MOHAN,** Early Medieval History of Kashmir, Mehar Chand Lachhman Das Publications, New Delhi.

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

11. **M. A. STEIN,** Kalhan's Rajtarangini, (Vol.I), Motilal Banarsidass, Delhi.

12. **M. L. KAPOOR,** Eminent Rulers of Ancient Kashmir, Oriental Publishers & Distributors, Delhi.

13. **PRITHIVI NATH KAUL BAMZAI,** A History of Kashmir, Metropolitan Book Co. (Pvt.) Ltd., New Delhi.

14. **R. C. MAJUMDAR,** Age of Imperial Kanauj, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

15. **R.C. MAJUMDAR,** The Classical Age, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.

16. **RAMA SHANKAR TRIPATHI,** History of Kanauj, Motilal Banarsidass, Delhi.

17. **RANJIT SITARAM PANDIT,** Rajtarangini, Sahitya Akademi, New Delhi.

18. **SHYAM MONOHAR MISHRA,** Yashovarman of Kanauj, Abhinav Publications, New Delhi.

19. **SOM NATH DHAR,** Jammu And Kashmir, National Book Trust, India, New Delhi.

20. **VIDYA DHAR MAHAJAN,** Muslim Rule in India, S. Chand & Co. Ltd. New Delhi.

21. **WOLSELEY HAIG,** The Cambridge History of India, (Vol. III), S. Chand & Co., Delhi.

## हिन्दी

१. आर. सी. अग्रवाल तथा आर.आर. सेठी, प्राचीन भारत का राजनीतिक व सांस्कृतिक इतिहास, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, दिल्ली।

२. आर.सी. मजूमदार, श्रेण्य युग, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

३. खान अब्दुल गफ्फार खाँ, आत्मकथा, हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली।

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

४. **जयचन्द विद्यालंकार,** भारतीय इतिहास की मीमांसा, हिन्दी भवन जालन्धर।

५. **पुरुषोत्तम नागेश ओक,** भारत में मुस्लिम सम्राट् (भाग–१), भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली।

६. **रघुनाथ सिंह डा०,** कल्हण कृत राजतरंगिणी (भाग–२), हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी।

७. **रजनी कान्त शर्मा (अनुवादक),** अलबेरूनी का भारत, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद।

८. **रमेश चन्द्र मजूमदार,** प्राचीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

६. **रामतेज शास्त्री पाण्डेय,** महाकवि कल्हण विरचित राजतरंगिणी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

१०. **विद्यासागर शर्मा,** तिब्बत की कहानी, लामा सनम पलजर की जबानी, विद्या मन्दिर, होशियारपुर।

११. **श्रीमदभागवत् पुराण–दशम् स्कन्ध।**

१२. **सन्तराम (अनुवादक),** अलबेरूनी का भारत (तीसरा भाग)।

१३. **सैयाह सुनामी,** उड़ता त्रिशूल, भारती साहित्य सदन, नई दिल्ली।

१४. **हर गोबिन्द शास्त्री (टीकाकार),** महाकवि कालिदास विरचितं रघुवंश महाकाव्यम्, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस।



CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri




CC-0. Bhushan Lal Kaul Jammu Collection. Digitized by eGangotri